मेरी कैलाश-यात्रा

ऊँचे हिमालय को पार करते समय का चित्र।

सत्यदेव

मेरी कैलाश-यात्रा

लेखक

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

रचयिता

"मेरी जर्मन यात्रा" संगठन का बिगुल" "शिक्षा का आदर्श" "अमरीका-भ्रमण" "सत्य-निबन्धावली" "मनुष्य के अधिकार" "राजर्षि भीष्म" "अमरीका-पथ-प्रदर्शक" और "अमरीका-दिग्दर्शन" इत्यादि

संशोधित संस्करण

संवत् १९८३

नवीन संस्करण

यह पुस्तक सत्य-ग्रन्थ-माला आफिस राजपुर ज़िला देहरादून से मिल सकती है।

मूल्य दस आने

प्रकाशक:—

सत्य-ग्रन्थ-माला आफ़िस
राजपूर ज़िला देहरादून

मुद्रक:—बद्रीप्रसाद पाण्डेय,
नारायण प्रेस, शाहगंज,
इलाहाबाद

सूचीपत्र

—:o:—

संशोधित संस्करण की भूमिका

भारत की शिक्षा-प्रणाली ऐसी भद्दी है कि हम दस दस बारह बारह वर्ष स्कूल कालेजों में पढ़ चुकने पर भी अपने प्यारे देश तथा उसके पड़ोसियों के विषय में कुछ नहीं जानते। तिब्बत, जहां किसी काल में भारतीय सभ्यता जोरों पर थी और जहाँ हमारे पुनीत तीर्थ स्थान हैं, इस समय हमारे लिये रहस्य पूर्ण देश हो गया है। संसार के पर्वत शिरोमणि हिमालय के विषय में हमें कुछ भी ज्ञान नहीं यद्यपि हम उसकी प्रशंसा के गीत नित्य गाया करते हैं।

मेरी बहुत वर्षों से हिमालय लांघने की इच्छा थी किन्तु अमरीका जाने की धुन ने उसे दबाए रक्खा। जिन दिनों मैं अमरीका में था उस समय एक प्रसिद्ध योरपीय वैज्ञानिक की तिब्बत-अन्वेषण सम्बन्धी सचित्र लेखमाला—"दी सेञ्चरी" नामक मासिक पत्रिका में निकली थी। उस लेखमाला में "श्री-कैलाश" तथा "मानसरोवर" का सचित्र वर्णन पढ़ मेरी पुरानी इच्छा बलवती हो उठी। मैं ने प्रण किया कि भारत जा कर अपने तिब्बत-स्थित जगत प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रा करूंगा।

१४ जून १९१५ को रात के दो बजे किसी दैवी शक्ति ने मुझे मेरे पुराने संकल्प का स्मरण दिला कर मुझे तिब्बत जाने की प्रेरणा की। मैं ने उसकी आज्ञा को शिरोधार्य किया और १६ जून बुद्धवार को अपने कठिन व्रत पालनार्थ अल्मोड़ा से तिब्बत की ओर चल पड़ा। उसी तीर्थ-यात्रा का वर्णन इस पुस्तक में है। यह पुस्तक एक उच्च उद्देश्य को सामने रखकर लिखी गई है।

पहिलीबार यह पुस्तक सम्बत् १९७२ वि० में प्रकाशित की गई थी। सत्य-ग्रन्थ-माला का आफ़िस उन दिनों प्रयाग में था सन् १९१९ के सितम्बर मास में इस पुस्तक का कापीराइट मैंने जन साधारण को दे दिया था, परन्तु मुझे अत्यन्त खेद है कि पुस्तक प्रकाशकों ने मेरी उस उदारता की कुछ भी कद्र न की उन्होंने न केवल पुस्तकों का दाम ही बढ़ा दिया बल्कि रद्दी कागज़ों पर पुस्तकें छापकर उनकी उपयोगिता भी नष्ट कर दी अपने प्रेमियों के अत्यन्त अनुरोध करने पर मैंने इस पुस्तक का संशोधित संस्करण प्रकाशित किया है। यह पुस्तक नये ढंग से छापी गई है ताकि इसकी उपयोगिता बढ़ जाय। पुस्तक को यात्रा के अनुकूल अलग २ पड़ावों में विभक्त कर दिया गया है। इससे यात्रा में स्वाभाविकता आ गई है। पहिले संस्करण में जहाँ कुछ बातों के इशारे दिये गये थे उन्हें इस संस्करण में स्पष्ट कर दिया गया है और लेखन शैली को ऐसा बना दिया गया है कि पुस्तक स्कूलों में पढ़ाई जा सके।

मुझे आशा है कि "कैलाश यात्रा" का यह संस्करण अधिक लोक प्रिय होगा और जो संशोधन मैंने इसके किये हैं, वे मेरे प्रेमियों को खूब पसन्द होंगे।

ता० २५-३-२६

सत्यदेव परिव्राजक

मेरी कैलाश-यात्रा

प्रथम खण्ड

प्रारम्भिक बातें

हमारे दो बड़े प्रसिद्ध तीर्थ, श्रीकैलाश और मानसरोवर, पश्चिमी तिब्बत में हैं। भारतवर्ष के नकशे को उठाकर देखिए—उत्तर में हिमालय लांघकर कश्मीर से आसाम तक एक लम्बा देश फैला हुआ है। यही तिब्बत है। यही है जिसको Mysterious Thibet रहस्यपूर्ण तिब्बत कहते हैं। यद्यपि हमारे पवित्र तीर्थों का वहां होना इस बात का पूर्णतया द्योतक है कि किसी काल में हिन्दू प्रभुता वहाँ पर थी, और हमारे बौद्ध भिक्षु, बराबर वहां जाकर धर्मोपदेश किया करते थे, पर इन सब बातों को भी सदियाँ बीत गईं। आज तिब्बत सचमुच रहस्यों से पूर्ण है, आज भी शिक्षित संसार को उसके विषय में बहुत कम मालूम है।

अच्छा, नकशा उठाकर देखिये। भारत के कौन कौन से प्रान्त तिब्बत को छूते हैं,—कश्मीर, कांगड़ा, रामपुर बशहर, गढ़वाल, अल्मोड़ा, नैपाल, शिकिम, भूटान और आसाम—ये नौ प्रान्त ऐसे हैं जिनका तिब्बत से सीधा सम्बन्ध है। इनमें से नैपाल, शिकिम और भूटान, ये तीन तो ऐसी रियासतें हैं जिनके

विषय में हमारे स्कूलों में कुछ भी पढ़ाया नहीं जाता और हम अपने इन भारतीय अङ्गों के विषय में बहुत कम जान सकते हैं। आसाम अति वन्य है। वहां से जो मार्ग तिब्बत को जाता है वह ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी द्वारा जाता होगा, और ब्रह्मपुत्र के मार्ग के विषय में संसार के विद्वानों ने अभी कुछ भी नहीं जाना। बाकी जो भाग तिब्बत का है वह पश्चिमी तिब्बत हमारे बाकी पांच प्रदेशों को छूता है। उधर से जिन घाटों द्वारा हमारे व्यापारी तिब्बतियों से तिजारत करते हैं उनके नाम धाम नीचे लिखे जाते हैं—

पहिला मार्ग—श्रीनगर (कश्मीर) से सिन्धु नदी की घाटी के रास्ते से होकर गरतोक जाता है। गरतोक तिब्बत में व्यापारी मंडी का स्थान है। श्रीनगर तथा लद्दाख़ से व्यापारी लोग इसी रास्ते तिब्बत जाते हैं।

दूसरा—कांगड़ा (पंजाब) ज़िले के लोग लाहौर होकर दमचोक के घाटे से रुदोक जाते हैं।

तीसरा—कल्लु के व्यापारी सपिती होकर शंगरंग घाटे से तिब्बत जाते हैं।

चौथा—रामपुर बशहर तथा शिमले के लोग शिपकी और सिरंग घाटों से तिब्बत पहुंचते हैं। शिपकी १५४०० फ़ीट और शिरंग १६४०० फ़ीट की ऊंचाई के घाटे हैं।

पांचवां—मसूरी (देहरादून) से एक रास्ता टिहरी होकर गंगोत्री की ख़बर लेता हुआ लिलांग घाटा पार कर तिब्बत ले जाता है। श्री गंगाजी के दृश्य इधर खूब देखने में आते हैं।

छठा—गढ़वालवाले माना (१७=६० फ़ीट) और नेती (१६६२८ फ़ीट) इन दो घाटों द्वारा अपना माल तिब्बत ले जाते हैं। इनके बीच में कमेट नामी चोटी २५४४३ फ़ीट ऊंची आकाश

से बातें करती हैं। मानावाला रास्ता श्री केदारनाथ जी के पास से गुजरता है और नेतीवाला रास्ता श्री बद्रीनाथ होकर दाबा [तिब्बत] जाता है। मैदान से जानेवाले बन्धु कोटद्वार तक रेल में जाकर आगे इस मार्ग को पकड़ सकते हैं; या ऋषिकेश होकर लक्ष्मणझूले से बद्रीनारायणजी वाली सड़क द्वारा जा सकते हैं।

सातवां—जोहार (अलमोड़ा) वाले मीलम से चलते हैं। सामने हिमालय की तीन ऊंची दीवारें हैं। पहली ऊंटाधुरा की १७५९० फ़ीट ऊंची दीवार है; दूसरी जंती की १७००० फ़ीट ऊंची है; तीसरा सब से कठिन कुङ्गरी विङ्गरी का घाटा (दर्रा) है जो १८३०० फ़ीट ऊंचा है। इन तीनों वर्फ़ानी पहाड़ों को पारकर तिब्बत पहुंचते हैं। मैं इसी बिकट मार्ग से गया था। श्री कैलाश जी की सीधी परिक्रमा का यही मार्ग है।

आठवां—दारमा (अलमोड़ा) के लोगों का रास्ता दारमा घाटा होकर जाता है। ये लोग भी ग्यानिमा मण्डी (तिब्बत) जाते हैं।

नवाँ—व्याना (अलमोड़ा) के लोग लंकपूलेख नामी घाटे से ग्यानिमा पहुंचते हैं।

दसवां—चौन्दास (अलमोड़ा) निवासी लीपूघाटे से (१६७८० फ़ीट) तकलाकोट तिब्बती मण्डी में पहुंचते हैं। मैं इसी रास्ते से वापिस आया था। यात्री कैलाश जी से इसी रास्ते लौटते हैं।

उपरोक्त दस घाटों में से हमारा सम्बन्ध केवल अलमोड़ा ज़िले के उन घाटों से है जिनका कैलाश और मानसरोवर के मार्ग के साथ सम्बन्ध है।

पहिला घाटा कुंगरीबिङ्गरी का जोहार होकर जाता है।

कैलाश जी के जाने का यह मार्ग है; दूसरा है व्यास चौन्दास के रास्ते से लीपूधुरा का मार्ग। इधर से यात्री कैलाश जी से लौटकर भारत आते हैं। यों तो अन्य मार्गों से भी कैलाश दर्शन हो सकता है किन्तु पुरानी प्रथानुसार ठीक परिक्रमा जौहार होकर जाने और व्यास होकर लौटने में ही समझी जाती है।

इसलिये अपनी यात्रा की कथा आरंभ करने से पूर्व मुझे अपने अल्मोड़ा से अपरिचित पाठकों को अल्मोड़ा तक पहुंचने के रेल मार्गों का बता देना असगत न होगा।

१—दक्षिण और पूरब से आने वाले देश बन्धु अवध रुहेलखण्ड रेलवे के बरेली जंकशन से रुहेलखण्ड कमाऊं रेलवे लाइन द्वारा (छोटी लायन) हलद्वानी या काठगोदाम पहुंच कर अल्मोड़ा पहाड़ का रास्ता पकड़ सकते हैं; या लखनऊ सिटी स्टेशन से गाड़ी में बैठकर सीतापुर होते हुये, भोजीपुरा से गाड़ी बदल कर, काठगोदाम पहुंच सकते हैं।

२—पश्चिम से आनेवालों को मुरादाबाद स्टेशन से छोटी लायन द्वारा काशीपुर होकर रामनगर पहुंचने का सुभीता है। रामनगर पहाड़ की तराई में आख़िरी स्टेशन है। यहां से अल्मोड़ा शहर पचास या बावन मील होगा।

३—जो यात्री अल्मोड़ा शहर नहीं देखना चाहते वे पीली-भीत से सीधे तनकपुर पहुंचकर पिठौरागढ़ होते हुये असकोट जायें। असकोट से जौहार होकर कैलाशजी को सड़क जाती है।

मैंने चूंकि अपनी यात्रा का आरम्भ अल्मोड़े से किया था इसलिये मैं काठगुदाम के रास्ते को सामने रखकर अपनी यात्रा का वर्णन करता हूं। पाठक, ध्यान पूर्वक पढ़ें—

पहिला पड़ाव

काठगोदाम से अल्मोड़ा

ब

रेलीशहर स्टेशन से काठ गोदाम आनेवाली दो ट्रेने—एक सवेरे छः बजे और दूसरी रात के दस ग्यारह बजे—छूटती है। पहली दिन के १२ बजे के करीब काठगोदाम पहुंचा देती है और दूसरी सवेरे पांच बजे के करीब। यात्रियों को बरेली से काठगोदाम का टिकट लेना चाहिये। काठगोदाम में मोटर और लारियाँ चलाने वाली कई कम्पनियाँ हैं, जो स्टेशन से अलमोड़ा तक यात्रियों को बहुत आसानी से पहुंचा देती हैं। सारे मोटर का किराया गर्मी की ऋतु में पचहत्तर रुपये देने पड़ते हैं और फी सवारी बीस या पचीस रुपये देने पड़ते हैं। लारी में काठ-गोदाम से अलमोड़ा तक अधिक से अधिक दस रुपये और कम से कम ४) फी सवारी लगती है। लारी वाले ग्राहक की सूरत देखकर अपने टके सीधे कर लेते हैं इसलिए उनके साथ बड़ी चैतन्यता से किराया ठीक करना चाहिये। काठगोदाम स्टेशन से अलमोड़ा मोटर के रास्ते ८० मील है और काठगोदाम में एक अच्छा हिन्दुस्तानी डाक बङ्गला है, जहां यात्रियों को बड़ा आराम मिलता है। यदि काठगोदाम प्रातःकाल ७ बजे पहुंचे तो उसी समय लारी में बैठकर रवाना होने से शाम को यात्री अल्मोड़ा पहुंच सकता है। दिन के बारह बजे यदि काठगोदाम से लारी में चले तो रास्ते में रानीखेत रात काटनी पड़ती है। इसलिए अच्छा यह है कि काठगोदाम से प्रातःकाल लारी पर सवार हो ताकि संध्या को अल्मोड़ा पहुंच सकें। रानीखेत

अच्छी बड़ी छावनी है जहाँ गोरी पल्टनें पहाड़ का मज़ा लूटने के लिए गर्मी के दिनों में आ जाती है। असल में सब से अच्छा पैदल चलना है। जिसको पहाड़ का आनन्द लेना हो उसे लारी में अपना सामान लदवा कर अल्मोड़ा भेज देना चाहिये और अपने असबाव की रसीद लारी वाले से ले लेना उचित है बोझ पहिले भेज कर आप मज़े मज़े पैदल चलिये, तभी पहाड़ की यात्रा का सुख मिल सकता है।

काठगोदाम से अलमोड़ा ३७ मील है। रेलवे स्टेशन से दो मील चलकर पहाड़ की चढ़ाई आरम्भ हो जाती है। १३ मील की चढ़ाई है इसके बाद उतार शुरू हो जाता है। चार मील का उतार है। काठगोदाम से चला हुआ यात्री भीमताल होता हुआ शाम को रामगढ़ पहुंच सकता है। भीमताल काठगोदाम से आठ मील पर है। यहां पर ठहर कर भोजनार्थ जलपान कर लेना चाहिए। यहां खाने पीने की चीज़ें सब मिलती हैं। अच्छा रमणीक स्थान है। रामगढ़ में भी दुकानें हैं; सब खाद्य वस्तुएँ विकती हैं। रामगढ़ में रात को ठहरने के लिए दुकानदारों के पास प्रवन्ध हो सकता है; बंगला भी है; स्कूल में भी योग्य सज्जन ठहर सकते हैं। स्कूल, डाक बंगले से डे़ मील नीचे है वहां भी हलवाई की दुकानें हैं। रामगढ़ से सवेरे चलकर शाम को पांच बजे या इससे पहले अलमोड़ा अच्छी तरह पहुंच सकते हैं। रास्ते में दस मील पर प्यूड़ा का पड़ाव है। यहां कुछ देर ठहर कर सुस्ताना ठीक होगा। यहां का जल बड़ा गुणकारी है। रामगढ़ से प्यूड़ा पहुंचने में रास्ता बहुत अच्छा है; सुन्दर सड़क है; दृश्य मनोहर है। केवल सवा मील की कठिन चढ़ाई है। प्यूड़ा से आगे पांच मील का उतार है। इसके बाद अल्मोड़ा पहाड़ की चढ़ाई शुरू होती है। यहां पर

दो पहाड़ी नदियों का संगम है और पुल बंधा है। अल्मोड़ा की साढ़े चार मील की चढ़ाई चढ़ने पर शहर में पहुंच जाते हैं। अच्छा अब अल्मोड़े का वर्णन सुनिए।

कूर्माञ्चल की इस पर्वतमाला में अल्मोड़ा सब से बड़ा शहर है। इसकी आबादी दस ग्यारह हज़ार के लगभग है। यहां का जलवायु अति नीरोग है इसलिए भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के लोग यहां आते हैं। पहले तपेदिक के बीमार अल्मोड़ा में अधिक आया करते थे पर अब गवर्नमेन्ट ने ऐसे बीमारों के लिए भवाली में बड़ा सुन्दर अस्पताल बना दिया है इसलिए तपेदिक के रोगी अल्मोड़ा न जावें। जिन भाइयों को इन पर्वतों का आनन्द लेने के लिए यहां आना हो वे 'शक्ति' संपादक अल्मोडा से पत्रव्यवहार कर पहले स्थानादि किराये का ठीक ठाक कर लें। बहुत से भोले भाले बन्धु यहां आकर बुरी तरह ठगे जाते हैं। उनको धूर्त मकानवाले दुगुणे तिगुणे किराए पर मकान देकर पहले किराया वसूल कर लेते हैं, पीछे से टूटी फूटी किसी वस्तु की मरम्मत नहीं करते। सारा किराया आरम्भ में कभी न देना चाहिए। आधा दे दिया, आधा फिर महीने दो महीने बाद, अच्छे प्रकार मकान के गुण दोष समझ कर देना उचित है।

संयुक्तप्रान्त के इस छोटे से शहर में शिक्षा का अधिक प्रचार है। बहुत से ग्रेजुएट, वकील, जज, पेन्शनर यहां पर मिलेंगे। कुशाग्रबुद्धि ब्राह्मणों की यहां कमी नहीं पर मुझे बड़े दुःख और सन्ताप से कहना पड़ता है कि इनकी बुद्धि और शिक्षा सब स्वार्थ में खर्च होती है। नौकरियों के भूखे अपना सर्वस्व इसके लिए हारने को उद्यत रहते हैं। खुशामदी, मक्कार, चुग़लखोर, भीरु ऐसे लोगों की यहां भरमार है। पबलिक कामों में कोई दिल-

चस्पी नहीं लेता। जो कोई करने को खड़ा हो उसके रास्तों में रोड़े अटकाने को सर्वदा उद्यत रहते हैं; उसकी बुरी से बुरी शिकायतें अधिकारियों के कानों तक पहुंचाने में कभी नहीं चूकते।

इन शिक्षित—परन्तु अशिक्षितों से भी बदतर—लोगों की कृपा से यहां ईसाइयों का बड़ा ज़ोर है। यहां के लोग स्वत्वाभिमान से ऐसे हीन हैं कि अपना निज का जातीय हाई स्कूल व कालेज न बनाकर ईसाइओं के कालेज के लिये हजारों रुपये का चन्दा देने को उद्यत हैं। अपना एक छोटा सा स्कूल था उसकी सहायता भी यह न कर सके पर ईसाइयों की सहायता के लिये यह रुपया जेब से निकालने को तैयार हो जाते हैं।

अल्मोड़े को अपनी इस पतितावस्था में थोड़ी बहुत आशा अपने नवयुवकों से है। पिछले पांच चार वर्षों से कुछ सुधार के चिन्ह दिखाई देने लगे हैं। यद्यपि नौकरी की कीच में फंसे हुये बुड्ढे नवयुवकों को बहुत हानि पहुंचा रहे हैं तो भी समय की जागृति के सामने इनकी कुछ पेश नहीं जाती। समय अपना प्रभाव इस संकुचित हृदय वाले नगर पर भी डाल रहा है। झूठे आडम्बरों की नसें धीरे धीरे ढीली हो रही हैं। नवयुवकों के उत्साह से यहां एक हिन्दी पुस्तकालय है जिसकी संचालिका यहां की 'शुद्ध-साहित्य-समिति' है यदि यहां के स्वयंभू नेता आपस का ईर्षा द्वेष छोड़ कर नवयुवकों की सहायता करें तो इस शहर में बहुत शीघ्र जागृति हो सकती है, पर उनको अपनी झूठी जोड़ तोड़ लगाने से फ़ुरसत मिले तब न।

* * * * *

इस अल्मोड़ा पर्वत पर मैं बराबर आया करता हूं। पहले वर्षों में व्याख्यानों में फसा रहने के कारण मैं कहीं जा आ न सका। इस वर्ष जून सन् १९१५ में मैंने अपने कैलाश दर्शन के

पुराने संकल्प को पूरा करने का विचार किया। कोई ख़ास तैयारी तो इसके लिये कर नहीं सका। थोड़ा सा सामान साथ लेकर अपनी इस विकट यात्रा को पूरा करने के लिये निकला।

पाठक महोदय! मेरे साथ आइये और इस यात्रा का आनंद लीजिये।

दूसरा पड़ाव

कैलाश की यात्रा का प्रारम्भ

१५ जून को चलने का विचार था, परन्तु तैयारी में कसर रह गयी, इसलिये रुक जाना पड़ा। बुधवार १६ जून को सवेरे चार बजे उठा। आकाश मेघों से आच्छादित था। शौचादि से निवृत्त होकर सामान बांधा। दो स्वेटर, एक सिर कान ढंकने का ऊनी टोप, दो गंजी, मृग चर्म, दो ऊनी हलकी चद्दरें, एक बिछाने का कम्मल, गीता की पुस्तक, डायरी, दो पहनने की रेशमी चद्दरें, तीन कोपीन, चार रुमाल, एक तौलिया, चन्दन की माला, १७ रुपये, दो रुपये की दोअन्नी चौअन्नी * इतना सामान तथा हाथ में कमंडलु, छाता और लट्ठ लेकर मैं तैयार हो गया। अल्मोड़े में मेरा स्थान शहर से दो मील के फ़ासले पर है। इसलिये दो तीन सज्जन जो मुझे पहुंचाने के लिये शहर से आने वाले थे उनकी मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी। साढे पांच बजे के करीब वे महाशय आ गये। एक ने मेरा बोझा उठा लिया। परमात्मा का नाम लेकर मैं यात्रा के लिये निकला।

अल्मोड़े से कैलाश की ओर जाने में पहले बागेश्वर आता

---

* तिब्बत में अंगरेज़ी नोट और गिन्नी नहीं चलती। केवल रुपये दोअन्नी, चौअन्नी आदि चलते हैं। लेखक।

है और वागेश्वर अल्मोड़े से २६ मील की दूरी पर है। तीन मील तक तो हम लोग पांच जने थे। इसके बाद मैंने शहर के तीन सज्जनों को लौटा दिया। मैं और विद्यार्थी हरिदत्त दोनों वागेश्वर की ओर चले। हरिदत्त को सामान उठाने के लिये वागेश्वर तक साथ ले लिया था।

इधर के पहाड़ों पर चीड़ के वृक्ष ही अधिक होते हैं। जिधर दृष्टि दौड़ाइए, चीड़ ही चीड़। गवर्नमेंट को करोड़ों रुपये की आमदनी इन वृक्षों से होती है। प्रत्येक वृक्ष के निम्न भाग के किसी स्थान की छाल प्रगट कर उसके नीचे एक मिट्टी का गिलास सा लगा देते हैं; पेड़ का तेल धीरे धीरे उसमें टपकता रहता है। इसी का तारपीन (Turpentine) बनाया जाता है। करीब करीब सभी वृक्षों के नीचे ऐसे गिलास लगे हुये देखने में आये।

पहाड़ी सड़क में चढ़ाव उतार होता ही है कहीं दो मील चढ़ाई तो तीन मील उतार। आठ आठ दस दस घर जहां बने हों वही गांव है। पहाड़ों के बीच चलते हुये यात्री को दूर से घर चमकते हुये दिखाई देते हैं। घर साफ सुथरे चूने से अच्छी प्रकार पुते हुये धूप में भले बोध होते हैं। सीढ़ियों जैसे खेत, एक के ऊपर एक, अपनी हरियाली से आंखों को तृप्त करते हैं। ऊंचे ऊंचे पहाड़ों पर गाय भैंस बकरी चरती हुई दिखाई देती हैं।

१३ मील चलकर ताकुला पहुंचे। दस बज चुके थे। रास्ते भर तो खूब ठण्डा रहा। यहां आते ही ज़ोर से वर्षा होने लगी। ताकुला देवी के मन्दिर में आज भण्डारा था। यह भण्डारा हैज़े को दूर भगाने के लिये किया गया था। हरिद्वार से लौटे हुये कुम्भ के यात्री हैज़ा साथ ले आये थे। उनके द्वारा इर्द गिर्द के पहाड़ी गावों में बड़े ज़ोर शोर से हैज़ा फैल रहा था। उसी को दूर भगाने के लिये यह यज्ञ किया गया था। वर्षा के

कारण मैं तो पहाड़ी के ऊपर एक क्षत्री के मकान में चला गया। वहां जाकर खिचड़ी बनवा कर खाई। गांव के लोगों ने रसद पहुंचायी। मैंने दाम देने चाहे पर 'साधु महात्मा' से दाम कौन ले। दोपहर को दो चार लोग आकर बैठ गये और अपना दुखड़ा कहने लगे। गवर्नमेन्ट के जङ्गल विभाग के सख़्त नियमों के कारण यह ग्रामीण लोग बड़े दुखी थे। बेचारे कहीं कोई लकड़ी तक नहीं तोड़ सकते। गोचर भूमि को Forest Reserve का नाम देकर पशुओं की स्वतन्त्रता छीन ली गयी है। एक बेचारा गरीब ब्राह्मण, जिसके गाय बैलों को बाघ मार गया था महा दुखी था, बिना शस्त्रों के ये बेचारे दीन, हिंसक जन्तुओं का सामना नहीं कर सकते। बिना जङ्गल विभाग के अधिकारियों के जरनेली हुक्म के ये लोग हिंसक जन्तु को मारने के लिये जङ्गल में नहीं घुस सकते। बेचारे अपना अपना दुखड़ा कह रहे थे। उनकी इस बेकसी को देखकर मुझे भारी दुःख हुआ।

तीसरा पड़ाव

ताकुला से बागेश्वर

बृहस्पतिवार १७ जून—रात कष्ट से कटी। मच्छरों ने सताया। सबेरे चार बजे उठ कर चले। ताकुला छोटा सा गांव है; दो पहाड़ियों के मध्य घाटी में है। गणनाथ नदी बीच में बहती है। यहां खेत सीढ़ियों ऐसे नहीं हैं। घाटी चौड़ी होने के कारण कुछ चौरसपन आ गया है। धान के खेत हरे भरे हो रहे थे। आज ताकुला से बागेश्वर जानेवाला एक और साथी मिल गया। वह बागेश्वर के डाकखाने में चिट्ठीरसां

होकर जा रहा था। उसी के साथ बातें करते हुये चले। रास्ते में स्थान स्थान पर पनचक्कियां देखने में आईं। इधर पनचक्कियों का अधिक प्रचार है। पहाड़ी नालों की कमी नहीं। वे ऊपर से नीचे आते हैं, इसलिये उनमें वेग भी होता है। उसी वेग की शक्ति से पनचक्की चलती है। आज भी दिन ठण्डा था। पहाड़ी दृश्य देखते हुये, पहाड़ी नालों की गड़गड़ सुनते हुये, आनन्द से जा रहे थे। कहीं नाले के किनारे किनारे जा रहे हैं कहीं वृक्षों से घिरे हुये ठण्डे मार्ग से। कहीं दोनों तरफ़ लम्बे लम्बे चीड़ के वृक्षों की सरसर ध्वनि सुनाई देती है; कहीं बिलकुल नीचे की ओर उतर रहे हैं; कहीं थोड़ा सा चढ़ाव है। दस बजे के करीब एक ऊँची चढ़ाई के पास पहुंचे। यहां से डेढ़ मील की विकट चढ़ाई है। धीरे धीरे कई जगह दम लेते हुये पहाड़ के ऊपर पहुंचे और उस चढ़ाई को तय किया। रास्ते में पसीने से नहा गया। जब चढ़ाई ख़तम हुई, तब ठण्डे पानी की धार मिली। वहाँ बैठकर दम लिया और जल पिया। ठण्डा बर्फ़ानी जल क्या स्वाद देता था वाह!

चढ़ाई खतम कर, प्यास बुझाकर, जब मैं ऊपर पहुंचा, तब एक बड़ा बगीचा देखने में आया। उसकी दीवार के पत्थर पर बैठकर मैं गाने लगा—

छोड़ो न तुम धरम को चाहे जान तन से निकले,
हो बात सत्य लेकिन मीठे बचन से निकले।
अग्नी का धर्म जब तक रहता है उसमें कायम,
हाथी की क्या है शक्ती जो पास होके निकले।
फिर अपना धर्म तज कर जब राख वह हो जावे,
चींटी निधड़क होकर ऊपर से उसके निकले।
है धर्म की यह महिमा यदि इसको धार लो तुम,

शेरे बबर की मानिन्द शक्ती बदन से निकले।
डर कर चलेगा वोही डूबा गुनाहों में जो,
थे ईश के जो प्यारे वे सूर्य बन के निकले।

मैं गाने का आनन्द ले रहा था और विद्यार्थी हरिदत्त पीछे आ रहा था। उसके पास बोझ होने के कारण वह बहुत धीरे धीरे चलता था। डाक बाँटने वाले साथी को मैंने विदा कर दिया। हरिदत्त के आने पर हम दोनों साथ २ चले। अब उतार था। जल्दी २ बढ़े चले गये। खूब ठण्डा हो रहा था। चलते २ कोई अढ़ाई मील गये होंगे कि एक पहाड़ी आदमी एक ओर से भागा हुआ आया और विनीत भाव पूर्वक मुझसे बोला, "आज आपको हमारे मन्दिर में निमंत्रण है"। भूख लगी हुई थी प्रेम का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। ऊपर उसके मन्दिर में पहुंचे। वहां गोरखनाथ की धूनी जल रही थी। हवन का सब सामान जुटा था। छः सात आदमी बैठे थे। पुजारी लोग भी थे। मेरा परिचय पाकर वे बड़े प्रसन्न हुये। नाम तो उन्होंने मेरा पहिले से सुन रक्खा था। खैर, नहा धोकर हवन की तैयारी की। मैंने हवन में सहायता दी। कार्य समाप्त हुआ। मेरे विद्यार्थी ने भोजन बनाकर खिलाया।

यहां भी हैज़े को दूर भगाने के लिये यह सब कुछ किया गया था। वर्षा अधिक हो जाने के कारण मैंने यहीं ठहरने का निश्चय कर लिया। एक प्रेमी बन्धु मुझे अपने घर में लेगये। वहां जाकर आराम किया। चार बजे वर्षा बन्द होजाने पर हरिदत्त को अल्मोड़ा वापिस भेज दिया। यहां से कुली का प्रबन्ध हो गया था। रात को मन्दिर में मेरा व्याख्यान हुआ। इर्द गिर्द के गाँवों के लोग इकट्ठे हुये। ख़ासा जमाव होगया। "धर्म क्या है?" इस विषय पर व्याख्यान दिया। लोग बड़े प्रसन्न हुये।

१८ जून शुक्रवार से २० जून रविवार तक—बोरा आठ दस घरों का ग्राम है। पहाड़ी ग्राम ऐसेही होते हैं। यहां से बागेश्वर साढ़े तीन मील है। सवेरे सात बजे ग्रामवालों से विदा होकर मैं बागेश्वर की ओर चला। डेढ़ दो मील का कठिन उतार है। पहाड़ों पर दूर तक सिवाय चीड़ के लम्बे लम्बे वृक्षों के कुछ दिखाई नहीं देता। इन वृक्षों से गिरा हुआ घास, पहाड़ी सड़क को फिसलाऊ बना देता है। उसके ऊपर से जूता बेतरह फिसलता है। ख़ैर।

उतार पूरा हुआ। चौड़ी घाटी में पहुंचे। यहां मैदान है। सरयू नदी की घाटी आरम्भ होजाती है। इसके किनारे किनारे चला। खेतों में स्त्रियां काम कर रही थीं। उनको देखता हुआ बढ़ा चला गया। यहां मच्छर अधिक था। आठ बजे के बाद बागेश्वर दीख पड़ा। गोमती और सरयू का यहां सङ्गम होता है। गोमती छोटे नाले के बराबर है। हां, बरसात में खूब बढ़ती होगी। इस पर पुल बंधा है। पुल पार करके बागेश्वर के बाज़ार में पहुंच गया। मेरे प्रेमी, जो पहले दिन सन्ध्या को बागेश्वर से दो मील पर मुझे लेने गये थे और निराश होकर लौटे थे, आज यहां बाज़ार में मिले। उन्होंने प्रेमपूर्वक "बागेश्वर सरस्वती पुस्तकालय" में ले जाकर मुझे ठहराया।

यहां आकर मेरा प्रोग्राम बदल गया। अल्मोड़े से मैंने बागेश्वर होकर अस्कोट के रास्ते जाने का निश्चय किया था। मानसरोवर जाने का वह सीधा मार्ग है। यहां बागेश्वर के लोगों ने कहा, कि जोहार के रास्ते जाना चाहिये, क्योंकि पूरी परिक्रमा तभी होगी जब पहले कैलाश दर्शन हों और पीछे से मानसरोवर में स्नान किया जाये। 'एवमस्तु' कहकर मैंने स्वीकार कर लिया

और जोहार की ओर जाने की तैयारियां करने लगा। जोहार का रास्ता वड़ा विकट है, यह मैंने पहले ही सुन रखा था। अपने अल्मोड़े के मित्रों को प्रोग्राम परिवर्त्तन की सूचना दे दी। वागेश्वर के व्यापारियों ने जोहार के अपने भोटिये मित्रों को मेरी यात्रा की ख़वर भेज दी और अपनी शक्ति भर सेवा करने को लिख दिया।

अब लगे सामान जुटाने। लोग कहने लगे-"जोहार के रास्ते शाक तरकारी नहीं मिलती। रास्ता विकट है। मच्छर डाँस, मक्खी बुरी तरह सताते हैं। जोकें रास्ता चलते जूते में घुस जाती हैं। ऊंटाधुरा, जयन्ती, कुङ्गरी विङ्गरी तीन बर्फ़ानी पहाड़ों को लांघते समय पहाड़ी विष चढ़ जाता है, उलटी होने लगती है।" तरह तरह की सूचनाएं मिलीं। मैंने घुटनों तक एक जोड़ा काली जुरावों का लिया। साढ़े पांच सेर सूखे फलों बादाम, किसमिस, छुहारा, नारियल-की थैली तैयार करवायी; एक लम्बी पहाड़ी लकड़ी ली। खटाई आदि भी साथ बांधी। तीन दिन वागेश्वर में रहे। तीन व्याख्यान दिये। वागेश्वर क्लब की नवयुवक मण्डली मेरे लिये सामान जुटाती रही।

पाठक! आइये, आपको वागेश्वर में सरयू नदी का दृश्य दिखलाकर यहां की कुछ बातें बतलावें।

वागेश्वर

वागेश्वर में सरयू नदी का दृश्य

दोनों ओर दूर तक लम्बी, ऊंची, हरी हरी पहाड़ियों के बीच, चौरस घाटी में आप अपने आपको खड़ा हुआ समझिये। उसी घाटी के बीच पत्थरों को रगड़ती हुई सरयू नदी बह रही है। पत्थरों की रगड से गड़गड़ाहट की ध्वनि बराबर कान में

आ रही है। पिता हिमाचल की गोद से निकल कर अपने सहचारियों के साथ टेढ़े मेढ़े चक्कर काटती हुई सरयू मस्तानी चाल से बागेश्वर में पहुंचती है। यहां पश्चिम से आने वाली अपनी बहिन गोमती के स्वागत के लिये यह अपनी चाल धीमी कर बड़े प्रेम से उसकी ओर निहारती है फिर वेग से आगे बढ़कर भगिनी का मुख चूमती है।

अहा! क्या सुन्दर दृश्य है। सरयू के किनारे पश्चिम की ओर पीठ कर खड़े होने से सामने निकट चण्डी पर्वत के दर्शन होते हैं। उसके ऊपर चण्डी महारानी का मन्दिर है। पीछे पश्चिम में नील पर्वत अपनी छटा दिखलाता है। इस पर भगवान नीलेश्वर विराजमान हैं। पूर्व से भागीरथी की धारा आकर सरयू जी का चरण छूती है। भागीरथी और सरयू मिल कर जहां गोमती से भेंट करती हैं वहां संगम पर वाघनाथ जी का प्राचीन मन्दिर है यहां मकर संक्रान्ति १३ जनवरी को बड़ा भारी मेला होता है। बागेश्वर सरयू जी के दोनों किनारों पर बसा है। दोनों किनारों पर आमने सामने दूकानें हैं। दो पुल बने हैं-एक गोमती पर दूसरा सरयू पर।

बागेश्वर मंडी है। मेले पर यहां दूर दूर से लोग आते हैं। तिब्बती चीजें; थुल्मे, चुटके, घोड़े, चंवर, मुश्क, पशमीने, नीलम, सुहागा, नमक, बेत की चटाइयां, पिटारे, खालें बिकने के लिये आते हैं। यहां से रानीखेत, गढ़वाल, अल्मोड़ा, शोर, अस्कोट, कैलाश के रास्ते जाते हैं। बागेश्वर में सरदी अच्छी पड़ती है पर बर्फ़ नहीं गिरता। गरमियों में गरमी होती है पर लू नहीं चलती। साये में ठण्डा रहता है। यहां एक क्लब "बाज़ार एसोसियेशन क्लब" बीस वर्ष से है। इसके साथ हिन्दी का एक छोटा सरस्वती पुस्तकालय भी है। इसमें हिन्दी के समाचार-

पत्र तथा पत्रिकायें आती हैं। नागरिकों के उद्योग से 'विद्या-प्रचारक' नामी रात्रि पाठशाला भी खुली हुई है। श्रीशिवप्रसाद चौधरी शिलाजीत वाले बड़े उत्साही सज्जन थे* क्लब, पाठशाला आपके उद्योग से स्थापित हुई थी। नवयुवक मण्डली भी अच्छी है। ईश्वर चाहेगा तो इन नवयुवकों के द्वारा बागेश्वर में शीघ्र विद्याप्रचार की जड़ जम जायेगी।

पुल के पास ऊंचे पत्थर पर बैठकर मैंने सरयूजी की खूब बहार देखी। स्नान का बड़ा आनन्द आया। बागेश्वर में तीन रोज़ रहा, सरयूजी का स्नान नहीं भूलेगा। अवधवासियों को चाहिये कि बागेश्वर में जाकर सरयू स्नान का विचित्र आनन्द लूटें। ईश्वर की छटा ही निराली है।

चौथा पड़ाव

कपकोट

जून २१ सोमवार—सवेरे छः बजे के बाद बागेश्वर से चला। मेरे प्रेमियों ने मेरा सामान—बिस्तरा और फलों की थैली—उठाने के लिये कुली तलाश कर दिया था। मैंने सबसे "बन्दे" कहा। फिर छतरी कमण्डलु, और लम्बी लकड़ी उठा सड़क पर हो लिया।

एक नवयुवक मुझे सात मील तक पहुंचाने के लिये साथ चल पड़ा। अब हम सरयू के किनारे किनारे चले। बागेश्वर से १८ मील मुझको सरयू घाटी होकर जाना था। मनस्यारी होकर कैलाश जाने का यही रास्ता है। मार्ग के दृश्य देखते

---

*शोक है कि उत्साही श्री शिवप्रसाद जी का स्वर्गवास हो गया है। उनकी मृत्यु से बागेश्वर के पब्लिक जीवन को बड़ी हानि पहुंची है—लेखक

और ग्रामीणों के पहाड़ी आलाप सुनते हुये हम अपने निर्दि‍ष्ट स्थान पर पहुंच गये। धूप चढ़ गयी थी इसलिये स्नान की ठानी। यहां सात मील पर एक बँगला बना है। यहाँ बागेश्वर के एक महाजन की दुकान है। यहीं विश्राम करने का निश्चय किया। घण्टा भर सरयू जी में स्नान किया। शीतल जल से धूप की गरमी दूर होगई। जो नवयुवक मेरे साथ आया था उसने भोजन तय्यार किया। भोजनोपरान्त तीन घंटा विश्राम कर फिर चलने की ठानी। कुली को सब से पहले भोजन खिलाकर आगे रवाना कर दिया था। तीन बजे के करीब मैं वहां से चला। यहां पर एक कनफटे नाथ और एक उदासी साधु का मेरा साथ हो गया। ये दोनों महाशय भी कैलाश जा रहे थे। कनफटे बाबा तो चरसी होने के कारण साथ नहीं चल सकते थे; हां उदासी महाशय मेरे साथ हो लिये। नवयुवक को मैंने बागेश्वर वापिस भेज दिया।

घनघोर घटा छा गई। वर्षा होने लगी। सरयूजी का पहाड़ी राग सुनते जा रहे थे। सड़क खराब है। कहीं नदी के किनारे किनारे, कहीं फासले पर होकर गयी है। वर्षा से सड़क और भी खराब हो गयी है। भीगते भागते सात मील पूरे किये और कपकोट पहुंचे। यहां ग्रामीण भाइयों ने मेरा स्वागत किया। संस्कृत पाठशाला के अध्यापक ने संस्कृत में लिखा हुआ 'एड्रेस' दिया। मेरी इन भाइयों ने अच्छी खातिर की। संध्या को ग्रामीण भाई इकट्ठे हुये। उनको मैंने उपदेश दिया। शिक्षा के लाभ बतलाये।

रात को भोजन कर मैं चौवारे में लेट गया पर मच्छरों की कृपा से नींद नहीं आई। चरसीनाथ और उदासी साधु के लिये भी खाने पीने का प्रबन्ध कर दिया गया था।

पांचवां पड़ाव

कपकोट से सामाधुरा

जून २२ मङ्गलवार—कपकोट से सवेरे दुग्धपान करके चला। दोनों साधु कार्यवशात् पीछे रह गये। कुछ सज्जन दूर तक पहुंचाने के लिये साथ आये। सरयू के किनारे किनारे, प्रकृति माता के दृश्यों का आनन्द लेता हुआ, मैं चला। कपकोट से तीन मील तक सरयू घाटी का दृश्य बड़ा ही मनोहर है। सरसब्ज़ पहाड़ियों पर गाय बकरी चर रहे थे। किनारे किनारे जहाँ घाटी चौड़ी हो गयी है, भूमि मखमली घास से लदी हुई बड़ी सुहावनी दीख पड़ती है। दोनों ओर ऊंची ऊंची पहाड़ियां सरयू जी की शोभा बढ़ाती हैं। नदी का पाट चौड़ा है पर जल कम है। क्योंकि अभी वर्षा आरम्भ नहीं हुई थी; आकाश निर्मल था।

आनन्द में मग्न मैं चला जा रहा था। सामने गाय भैंस रास्ते में खड़ी थीं। उनके साथ मैले कुचैले कपड़े पहने हुये चरवाहे भी थे। लाठी से मैंने अपने लिये रास्ता किया। गाय बहुत छोटी छोटी और चरवाहे भी कमज़ोर दुबले पतले; ऐसे सुन्दर, सुहावने जलवायु में इनकी ऐसी दुर्दशा! गैया इधर की आधसेर तीन पाव दूध देती हैं और छोटी होती हैं। हिमालय तो वही है; उसकी नदियां भी वही हैं, परन्तु पहाड़ी मनुष्य और पशुओं पर अधःपतन ने पूरा प्रभाव डाला है। पुस्तकों में पढ़ा करते थे कि पहाड़ी आदमी वीर, उत्साही और स्वतन्त्रता-प्रिय होते हैं, पर इधर के पहाड़ियों में इन गुणों का सर्वथा अभाव है। सैकड़ों वर्षों के दासत्व ने इनका मनुष्यत्व नष्ट कर दिया है; दासता इनके चेहरों पर झलक रही है; बेगारी का बोझ ढोते ढोते इनका स्वत्वाभिमान नष्ट हो गया है। ब्राह्मण,

क्षत्री, वैश्य, शूद्र सभी में दासता के भयंकर दुर्गुण विद्यमान हैं। अल्मोड़ा से लेकर यहां तक पहाड़ी लोगों की यही दशा देखी; नीचावस्था (Degeneration) का पूरा राज्य पाया।

पर सरयू अपनी उसी पुरानी चाल से, अपने उसी यौवन मद में, लड़ती झगड़ती जा रही है। उसको अपने काम से काम है। सड़क के किनारे किनारे, ठण्डे सोतों का जल यात्री की प्यास को दूर करता है।। तीन मील पूरे होगये, सरयू जी की घाटी छोड़ कर जोहार का रास्ता पकड़ा। यहां दो पथ हैं—एक तो पिण्डरी ग्लेशियर को जाता है और दूसरा कैलाश की ओर गया है। मैं और मेरा कुली दाहिने रास्ते हो लिये। नाले के किनारे किनारे चले। यहां पर मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ-"पानी सभ्यता प्रचार करने वाला बड़ा भारी इन्जीनियर है। पहाड़ों को काट कर रास्ता बनाने वाला और सभ्यता को फैलाने वाला जल है। कैसे कैसे पर्वतों को इसने काटा है; कहां की मिट्टी लाकर यह खेत बनाता है। दुर्गम्य हिमालय में मार्ग बनाना इसी का काम है।" नाले के किनारे किनारे सुन्दर सड़क बनी हुई है। बादल आ जाने से ठण्डा हो गया था। छोटे छोटे, दस पांच घरों के ग्राम कई देखने में आये। जगह जगह हरे हरे धान लहलहा रहे थे। जहां थोड़ी सी भूमि मिली वहीं खेती कर लेते हैं; बेचारे पहाड़ी इसी पर गुज़ारा करते हैं।

मैं आज जुराब पहन कर नहीं चला था, इसलिये मच्छरों ने कुछ सताया। यात्री को चाहिये, कि कपकोट से जुराबें पहर ले; जुराबें घुटनों तक हों। दो चार साथियों के साथ यात्रा करे तो अच्छा है। क्योंकि आज कल यह रास्ता बहुत कम चलता है, कोई पथिक रास्ते में नहीं मिलता, इसलिए उन बन्धुओं को जो नगर में रहने वाले हैं ऐसे निर्जन पथ में

भय लगेगा। यद्यपि डर किसी जीव जन्तु का नहीं और न लूट घसूट ही का भय है, पर दृश्य बड़े वन्य हैं। 'एकान्त' इस शब्द की सार्थकता बोध होने लगती है और नास्तिक भी आस्तिक बनने की इच्छा करने लगता है।

नौ मील चलकर चढ़ाई मिली। धीरे धीरे, कदम कदम, आहिस्ता आहिस्ता चढ़ना शुरू किया। थोड़ी दूर चढ़ता, थक जाता। किसी प्रकार उन दो मीलों को पूरा किया। शामा-धुरा के निकट पहुंचे। स्वागत के लिये दो सज्जन आगे से खड़े थे। बड़े प्रेम से ले गये और अपनी दुकान में ले जाकर ठहराया; सेवा की। आह! वह मनुष्य कैसा भाग्यवान है, जिसका पड़ाव पूरा होने पर प्रेमी सज्जन अगुवानी करते हैं, और मीठे मीठे शब्दों से उसकी थकावट दूर कर देते हैं। अम-रीका में जब मने २३०० मील की यात्रा की थी, तो चालीस मील पैदल चलकर जाता, मगर मंज़िल पूरी होने पर न ठहरने का ठिकाना, न खाने का प्रवन्ध, न पैसा पास! वे दिन कैसे कटे थे; कभी भूलने वाले नहीं।

डेढ़ घण्टे बाद उदासी साधु भी पहुंच गया। न्हाये, धोये; पत्र लिखे। कुछ आराम किया, चरसीनाथ भी धीरे धीरे आ पहुंचा। ये दोनों महाशय थे निरे मूर्ख, काला अक्षर भैंस बरा-बर था। चरसी नाथ तो अवस्था में बड़े होने के कारण कुछ सभ्य भी था, उसे कुछ सत्सङ्ग भी हो चुका था, पर उदासी साधु तो निरा गँवार पंजाबी जाट था। सिवाय खाने पीने की बात के दूसरी चर्चा न थी। मैंने आज उसे देवनागरी वर्णमाला के पहले छः अक्षर सिखाये। उसकी आवाज़ अच्छी मीठी थी, इसलिए मैंने चाहा कि उसे कुछ देशहित सम्बन्धी भजन सिखा कर कुछ काम लिया जावे। पर उसकी स्मरणशक्ति बडी ख़राब

थी; वह भजन कण्ठ नहीं कर सकता था। दो घण्टा सिर खपाकर हार कर मैंने छोड़ दिया। क्या करता, थके हुये यात्री से पत्थर में छेद नहीं हो सकता था।

रात को अच्छी तरह नींद नहीं आई। जहां मैं सोया था, वहां बहुत से चूहे आकर कबड्डी खेलने लगे। उनको मैंने बहुतेरा मना किया, पर भला वे मूसरचन्द कब मानने वाले थे।

छठवां पड़ाव

शामाधुरा से तेजम

जून २३ बुधवार—खा पीकर चले। अल्मोड़ा से बागेश्वर २६ मील, बागेश्वर से कपकोट १४ मील, कपकोट से शामाधुरा ११ मील,—कुल ५१ मील आ चुके थे। आज हम को तेजम पड़ाव पर पहुंचना था। यह शामाधुरा से आठ मील के क़रीब है। खा पीकर १२ बजे के बाद मैं और उदासी साधु चले। शामाधुरा के पोस्टमास्टर महाशय ने मेरा असबाब मनस्यारी पहुंचाने के लिए कुली का प्रबन्ध कर दिया। मनस्यारी यहां से तीसरा पड़ाव २९ मील पर है।

आध मील तक चढ़ाई है। यहां तक तो दो चार प्रेमी हमें छोड़ने आए। उनसे प्रेमपूर्वक विदा होकर हम आगे बढ़े। थोड़ी दूर तक मैदान है। सड़क मज़े की है, बातें करते करते चले गये। आगे बेढब उतार है। सड़क टूटी हुई, पत्थर रास्ते में, मैं दो बार गिरा, बच गया। यदि सड़क से नीचे फिसल जाता तो रामगङ्गा में ही जाकर पहुंचता। मालूम नहीं अल्मोड़ा के अधिकारीवर्ग क्यों आंखें मूंदे पड़े हैं। ऐसी रद्दी सड़क जहां रोज़ डाकवाला बेचारा आता जाता है, जहां जाड़े में सैकड़ों

हज़ारों पशु ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर जाते हैं, ऐसी बुरी सड़क पर चलते हुए उन ग़रीब ग्रामीणों के दिलों में अपने ज़िले के अधिकारियों के प्रति कैसे कैसे भाव उठते होंगे। धिक्कार है उन मनुष्यों को, जो बड़ी ज़िम्मेदारी के ओहदे को ले तो लेते हैं, पर कर्तव्य पालने में ऐसे कच्चे हैं, कि हज़ारों आत्माओं को उनकी असावधानी से कष्ट उठाना पड़ता है।

सामने रामगङ्गा चमक रही थी। बड़ी कठिनाई से उस रद्दी सड़क को पूरा किया। आगे सड़क और भी टूटी हुई थी, इसलिये रामगङ्गा की बजरी बजरी चलकर पुल पार किया और नदी के दूसरे किनारे पहुंच गये। यहां से तेजम केवल मीलभर रह जाता है। विचार किया कि रामगङ्गा के स्वच्छ जल में स्नान करलें। चरसीनाथ भी आ गये थे। तीनों ने रामगङ्गा में खूब स्नान किया। रामगङ्गा का प्राकृतिक दृश्य यहां बड़ा विकट है। बड़ा पाट है और दोनों ओर बड़े ऊंचे ऊंचे पहाड़ हैं। जब वर्षा में रामगङ्गा चढ़ती है तो पहाड़ टूट टूट कर बहे चले आते हैं। उस समय नदी का रूप बड़ा विकराल हो जाता होगा। खैर, स्नान कर उष्णता मिटाई और चले। तेजम के पास एक दूसरी छोटी नदी रामगङ्गा में आकर मिली है। उसका पुल दो लम्बे लकड़ी के लट्ठे रखकर बनाया गया है। पार करते समय बड़ी सावधानी से चलना पड़ता है। उसको पारकर तेजम पहुंचे। यहां एक ही दुकानदार है उसके घर जाकर डेरा किया। असबाब उसके यहां छोड़कर मैं रामगङ्गा* के साथ बातें करने के लिये चला।

---

* यह रामगङ्गा सरयू की सहायक नदी है। मुरादाबादवाली बड़ी रामगङ्गा नहीं—लेखक

उदासी साधु भी मेरे साथ हो लिया। रामगङ्गा के वीच एक ऊंचे पत्थर पर मैं वैठ गया। उदासी साधु दूसरी जगह फासले पर जा वैठा। क्या क्या भाव मेरे हृदय में उठे।

जल की तरंगें मेरे पत्थर के इर्द गिर्द होकर जा रही थीं। रामगङ्गा यहां पहाड़ के विल्कुल नीचे होकर वहती है और पाट ज़रा छोटा है। वड़े वड़े ढोंके पत्थर उसकी धार के वीच में पड़े हैं, मानो उसको जाने से रोकते हैं। वे कहते हैं—"मत जाओ प्यारो मत जाओ।" वह क्या अठखेलियां करती है। उनके साथ आलिङ्गन करके नाच रही है। उनके गले में अपनी दोनों भुजाएं डाल किस प्रेम से विदा चाहती है। जिस प्रसन्नता से वह जारही है, ऐसा मालूम होता है कि उसको अपने निर्दिष्ट स्थान का हाल मालूम है। सुनो सुनो, विदा होते समय क्या कहती है—"मैके जाती हूं, मैके! वहिन सरयू से मिलने जाती हूं—" क्यों न हो इसीलिये तो ऐसी प्रसन्न है। ससुराल में पर्दे के अन्दर वन्द पड़ी रही—न कहीं जासके, न आ सके—शरीर की लाली सब उड़गई, चेहरा सफेद पड़ गया। अवमैके जाकर खा पीकर खूव हृष्ट पुष्ट होजायेगी। हां, हां इसीलिये तो इतनी प्रसन्न है। वड़े वड़े पत्थर तो इसका रास्ता रोक रहे हैं, उसके जाने से अप्रसन्न हैं, मगर वह देखो, पहाड़ी वृक्ष लताएँ किस प्रेम से उसको आशीर्वाद दे रही हैं; कैसे झुक झुक कर वे अपना सन्देशा उसको कह रही हैं। वे कहती हैं—

"जा गङ्गे! जा। हमारे मैदान के भाइयों को हमारा कुशल मङ्गल कह देना।"

* * * * * *

सन्ध्या हो गई। मैं लौट आया। आकर भोजन किया;

दुकानदार ब्राह्मण था, उसने तीनों का खाना बना दिया। खाकर सो रहे। रात को वर्षा हुई।

मेरी यात्रा का पहला खण्ड पूरा होता है। अल्मोड़े से तेजम तक हिन्दू सभ्यता और आर्य्य रंगरूप का प्रसार है, अब आगे मंगोल रंगरूप देखने में आएगा। तेजम से आगे 'भोट' का इलाका आरम्भ होता है, इसलिए दूसरे खण्ड को आरंभ करने से पहिले हमें एकबार पीछे की ओर दृष्टि डालनी चाहिये। बरेली से काठगुदाम या हलद्वानी तक तो रेल में, इसके बाद भीमताल, रामगढ़, प्यूड़ा, अल्मोड़ा, ताकुला, बागेश्वर, कपकोट, शामाधुरा और तेजम, यहां तक हम पहुंचे हैं। रेल का स्टेशन (काठगोदाम) ६५ मील पर है और अल्मोड़े से हम ५८ मील दूर आगये हैं। यहां से आगे जोहार शुरू होता है। अब तक हम अल्मोड़े के उस भाग में थे जहां भीरु दुकानदार, कुटिलनीतिज्ञ नौकरी पेशा ब्राह्मण, और दुर्बल किसानों की बस्ती है। अब इस के आगे हम उद्योगी, साहसी, व्यवसायी तथा पोढ़े शरीरवाले, परन्तु शिक्षाहीन, भोटिओं, की भूमि में पैर धरेंगे। पर्वत निवासियों में जो गुण होने चाहियें वे अभी तक हमारे देखने में नहीं आये थे। मैदान से आने वाला यात्री पहाड़ में चोरी का अभाव अवश्य पाता है, परन्तु पहाड़ी नौकर बहुत कम ईमानदार मिलते हैं। इसका बड़ा भारी कारण उनकी निर्धनता है। यद्यपि साधारण दृष्टि के मनुष्य को इधर पहाड़ में निर्धनता बोध न होगी, क्योंकि यहां के ग्रामीणों के मकान साफ सुथरे, चूने से पुते हुये, पत्थरों से छाये हुये होते हैं, और मैदान के किसानों के घर मिट्टी के तथा घास फूस से छाये हुये होते हैं, पर उसका एक मात्र कारण यहां पहाड़ में पत्थरों की अधिकता है। पहाड़ के ग्रामीण भी मोटा अन्न खाकर बड़ी कठिनाई से अपने दिन

काटते हैं। कुली बेगार* के मारे इनका नाक में दम है; जंगल विभाग के कड़े कानूनों की वजह से इनके पशु भूखों मरते हैं, और लकड़ी की इन्हें बड़ी दिक्कत हो गई है।

यहां तक हमने हिमालय का कोमल, मृदु जलवायु देखा है। हम लोग छः हज़ार, साढ़े छः हज़ार फीट तक ऊपर उठे होंगे। यह कमाऊँ की पहाड़ियां कहलाती हैं, अब इसके आगे हिमालय के शाही द्वार में घुसना होगा। जल, वायु, दृश्य, निवासी—सब बदल जायँगे।

पाठक,! आइए भारत के द्वारपाल के श्वेत भवन में प्रवेश करें। अब तक तो इसका नाम ही सुना करते थे, अब तक तो इसके यश के भजन ही गाया करते थे, आइये, अब इसके दर्शन कर इसके मुख से अपनी प्राचीन कीर्ति-कथा श्रवण करें।

---

* बड़ी प्रसन्नता की बात है कि कुली बेगार की प्रथा पहाड़ से बिलकुल उठ गई है। कुली बेगार के भूत को हम लोगों ने नारायण तिवारी दीवाल के पास के चौड़े मैदान में बड़े जनसमुदाय के सामने जला दिया था—लेखक

द्वितीय खण्ड

जोहार
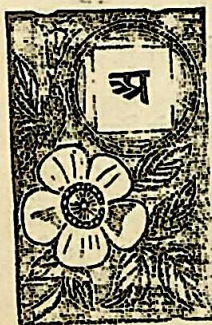
ल्मोड़ा ज़िले में तेजम के पास, छोटी रामगंगा पार करने के बाद, जोहार परगना शुरू हो जाता है। इसके तीन भाग हैं—मल्ला जोहार, गोरीफाट, और तल्ला देश। गिरगांव से मनस्यारी तक गोरीफाट और मनस्यारी से मीलम तक मल्ला जोहार है। इस परगने में पश्चिमी भोटिया लोग बसते हैं। भोट का इलाका बड़ा है। उसमें चौदांस, व्यास, दारमा, जोहारऔर गढ़वाल के भोटिये सब शामिल हैं। जोहार के पश्चिम गढ़वाल ज़िले के नेती और माना घाटों के पास रहने वाले भोटिए भी पश्चिमी भोटिये कहलाते हैं। जोहार के भोटिओं को शोका कहते हैं, और मानाघाटे के भोटिये मारचा कहलाते हैं। शोका और मारचा भोटिओं में शादी विवाह होते हैं। जोहारी लोग देखने में जापानी, चीनियों की तरह होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि किसी काल में इधर चीनियों का राज्य था। चीनी औरतों के साथ हमारे लोगों का सम्बन्ध होने से उनकी सन्तान मंगोल आकृति की होगई है। अब भी भोटिआ व्यापारी तिब्वती औरतों के साथ सम्बन्ध करने में आगा पीछा नहीं करते। तिब्वतिओं के साथ इनका चाय पानी होता है। इनके नाम सब हिन्दू ढंग के हैं और अधिक नाम क्षत्रियों की तरह हैं। तेजम से नीचे के हिन्दू भोटिओं के हाथ का नहीं खाते; उनकी बड़ी छूत मानते हैं। कारण यह देते हैं कि हूण देश अर्थात्

तिब्बत हिमालय पार है। वहां जाने से मनुष्य धर्म खो देता है, और भोटिए लोग तिब्बतिओं के हाथ का खाते पीते हैं इसलिये ऐसा नियम है। भोटिये लोग, यद्यपि नाम क्षत्रियों जैसे रखते हैं, मगर जनेऊ नहीं पहनते। कहते हैं कि उसके नियमों की पाबन्दी नहीं हो सकती। नैपाली क्षत्री भी तिब्बत में व्यापार करने जाते हैं। वे जनेऊ पहनते हैं इसलिये तिब्बत से लौटकर उनको प्रायश्चित करना पड़ता है।

जोहारी लोग बहुत ज़ियादा हमारे निकट हैं। वे हिन्दू रस्मो रिवाज को भी थोड़ा बहुत पालन करते हैं। उनमें धीरे धीरे शिक्षा का प्रचार भी होरहा है। वे अपने आपको अपने पूर्वजों के निकट लाने का उद्योग कर रहे हैं। ब्राह्मणों से संस्कारादि भी कराने लगे हैं। वे अपने आपको "रावत" कहते हैं। जब कोई मर जाता है तो उसकी अस्थियां मानसरोवर में डालने जाते हैं। तिब्बती देवताओं की पूजा ने भी अभी तक इनका पीछा नहीं छोड़ा। इनमें छोटी जाति के लोग डूमड़े कहलाते हैं। वे बढ़ई, लोहार, दरजी, मोची, तथा ढ़ोली आदि का पेशा करते हैं। रावत लोग डूमड़ों के हाथ का नहीं खाते। अच्छा अब इनके रहन सहन की बात सुनिए।

जोहारी लोग तीन जगह घर बनाते हैं। जून, जौलाई, अगस्त, सेपटेम्बर में तो ये लोग मीलम (मल्लाजोहार) में रहते हैं। मल्लाजोहार बहुत ठण्डा है। मीलम १२५०० फीट की ऊंचाई पर है। जाड़ों में मल्लाजोहार बर्फ़ से ढक जाता है। जब जाड़ा पड़ने लगता है तो जोहारी लोग अपने बाल बच्चों, भेड़ बकरी तथा झब्बू (एक प्रकार का बैल) को लेकर नीचे मनस्यारी में आ जाते हैं। मनस्यारी में अक्टूबर नवम्बर दो महीने ठहरते हैं। जब यहां अधिक शीत पड़ने लगता

है तो नीचे तेजम में रामगंगा के किनारे चले आते हैं। यहां दिसम्बर, जनवरी, फरवरी, मार्च के शुरू तक ठहरते हैं। फिर तेजम से मनस्यारी चले जाते हैं और वहां अप्रेल, मई तक रहते हैं। तेजम में आकर वे कुछ दिन ठहर कर नीचे कानपुर, बम्बई, कलकत्ता में माल लेने चले जाते हैं। वहां से महीने डेढ़ महीने में लौटते हैं। मनस्यारी में जाकर अपने तिब्बती सफर की तय्यारियां करते हैं। जून के महीने में अपना सारा लटर पटर लेकर पहाड़ी दुर्गम पथ को तैकर, वे लोग मीलम पहुंचते हैं। मीलम से जौलाई के आरम्भ होते ही हज़ारों बकरी, झब्बू, भेड़ें, अनाज और माल से लदे हुये, १८३०० फीट ऊँचे भयंकर घाटे (Pass) को तै कर तिब्बत में जाते हैं, और वहां हुणिओं, (तिब्बती लोगों) के साथ व्यापार कर, अनाज और कपड़े लत्ते के बदले; ऊन, सुहागा, चंवर, पश्मीने, चुटके आदि माल लेकर लौट आते हैं। कैसा कठिन मार्ग है; कैसे राक्षसों के साथ व्यापार किया जाता है, इन सब बातों का सविस्तर ब्योरा मेरी यात्रा में मिलेगा। डेढ़ दो लाख का व्यापार अकेले ऊंटाधुरा घाटे द्वारा जोहार के लोग करते हैं। रास्ता ऐसा विकट है कि एक बार हिमालय पार से लौटकर फिर कोई उधर का नाम न ले, परन्तु ये लोग हरसाल जान हथेली पर रख कर तिब्बत जाते हैं और अपने इधर का माल उधर पहुंचाते हैं। उनके पुरुषार्थ की जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

सहृदय पाठक, मैंने भूमिका के तौर पर आपको जोहार का परिचय कराया है। अब आगे मेरी यात्रा में आप जोहार की सैर करेंगे, जलप्रपात देखेंगे; गोरी नदी के मनोहर दृश्यों का आनन्द लूटेंगे; मीलम में दस बारह दिन रहेंगे; ग्लेशियरों पर

घूमेंगे; देश सेवक भारत-द्वारपाल हिमालय से मुलाक़ात करेंगे। कहां तक लिखूं यह विचित्र यात्रा है।

सातवां पड़ाव

भोट में प्रवेश

२४ जून वृहस्पतिवार—सवेरे पांच वजे उठे। वर्षा हो रही थी। छतरियां तान कर चल पड़े। तेजम के पास जो नदी रामगंगा में मिलती है उसको जाकुला कहते हैं। इसका कठिन पुल पार कर, इसके किनारे किनारे, ऊपर पहाड पर चढ़े। मखमल जैसी हरियाली से लदे हुये दो पहाड़ों के वीच यह जाकुला नदी वहती है। घाटी का रास्ता तंग है इसलिये पहाड़ी दृश्यों का स्वरूप वड़ा वन्य है स्थान स्थान पर, ऊंची चौड़ी पहाड़ी भूमि पर भोटिओं की झोपड़ियाँ वनी हैं। वादल घाटी में वड़ी मौज से क्रीड़ा कर रहे थे, जिधर का मौका पाते उधर ही उलट पड़ते थे। सामने जल प्रपात दिखाई दिया। श्वेत सूत के तागे की तरह जल की धारा पहाड़ पर से वक्र गति से नीचे आरही थी। क्या ही नैसर्गिक दृश्य था।

चलते चलते एक पहाड़ी नाले के किनारे पहुंचे। चरसी-नाथ तो पीछे था; उदासी साधु मेरे साथ था। उस नाले के किनारे हम दोनों ने बैठकर हाथ मुँह धोया। यहां एक जोंक मेरे पांव को चिपट गई। उसको छुड़ाया; खून वहने लगा; पाओं को धो धो कर ठीक किया। इधर बहुत जोकें हैं, यात्री को अपने पाओं में लम्बी जुरावें पहन लेनी चाहिये। फिर चल पड़े। थोड़ी दूर गये कि वादल फट गया। स्थान स्थान पर ग्रामीण लोग हल चलाते हुए दिखाई दिए। थोड़ी थोड़ी भूमि से फायदा

उठाने का उद्योग किया जाता है। पहाड़ी घास बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। आहा! यह दृश्य वर्णन करने के लिये नहीं; ये तो देखने लायक हैं।

अब चढ़ाई आरम्भ होगई। हमको आज गिरगांव पहुंचना था। अभी मुश्किल से मील भर गये होंगे कि ऊंचे, दूर, एक बड़ा रमणीक झरना चमकता हुआ दिखाई दिया। यहां मैदान सा आ गया था। इधर उधर दृष्टि दौड़ाने से चारों ओर ऊंची पहाड़ियां मानों दीवारों की मानिन्द खड़ी बोध होती थीं। मेरी निगाह उस जलप्रपात की ओर लगी हुई थी। कुछ मामूली चढ़ाई चढ़ने पर एक पुल दिखाई दिया। उदासी साधु तो दूसरे किनारे पर स्नान के लिये बैठ गया और मैं आगे बढ़ा। मैंने विचार किया कि गिरगांव पहुंच कर स्नान करूंगा और वहीं उस झरने को भी देखूंगा। मगर कहां! भूख सख़्त लगी हुई थी और खाने को कुछ पास में था नहीं। दो मील से ज़ियादा चढ़ाई चढ़ने पर गिरगांव की झोपड़ियां दिखाई दीं। गिरगांव क्या था? छीः! छीः!! छीः!!! घासफूस की पन्द्रह बीस झोपड़ियां। अब क्या किया जाता। उदासी भी आ पहुंचा था। बड़ी मिन्नत खुशामद से पाँच रोटियाँ मिलीं और तीन पाव छाछ। छाछ तो मैं पिया नहीं करता, सो मेरे हिस्से में अढ़ाई रोटियां ही आईं। उनको खाकर मैंने सेर भर जल पिया, तब कहीं होश ठिकाने आया। यात्री को थोड़ा सा खाना चलते समय ज़रूर साथ रखना चाहिये। मैंने बड़ी भूल की थी जिसकी काफी सज़ा मुझको मिली। मेरा असबाब शामाधुरा में रह गया था। उसी में खाने का सामान भी था। कुली अभी आया नहीं था, इसलिये यह सब कष्ट हुआ।

बारह बज चुके थे। मनस्यारी गिरगांव से बारह मील है।

हम लोग दस ग्यारह मील चल चुके थे। गिरगांव में रात को ठहरने का कोई स्थान नहीं था, इस लिये यहां से चलना ही उचित समझा। दिल कड़ा कर चल पड़े। थोड़ी दूर चलकर विकट चढ़ाई शुरू हो गई। जो अढ़ाई रोटी खाई थीं वे सब स्वाहा हो गई; पेशाब जो आया वह मानो रक्त था। लाल सुरख! यह क्या? मैंने सोचा कि अब क्या करना चाहिये। बढ़े चले गये। बहुत ऊंचे आगये थे; बादलों की धुन्ध में छिप गये। यहां बड़े बड़े काले मुंहवाले लंगूर इधरउधर वृक्षों पर किलाड़िया मार रहे थे। भूख ने बड़ा ज़ोर बांधा। जब चढ़ाई खतम हुई तो चित्त ठिकाने आया। यहां दो चार मिन्ट बैठकर सुस्ता लिया। आकाश बिलकुल साफ था। चढ़ाई खतम होने पर बहुत सी झन्डियां देखने में आई। भोटिआ लोग चढ़ाई ख़तम होन पर, या पड़ाव के निकट ऐसी ऐसी झन्डियां टांग देते हैं। रंग बिरंगे कपड़ों के टुकड़े वृक्षों, की शाखाओं या पत्थरों से बांध देते हैं, इससे यात्री को धीरज हो जाता है।

अब उतार आरम्भ हुआ। घना जंगल स्थान स्थान पर नाले, सुन्दर झरने, एक से एक बढ़िया, क्या कहना है। अभी हमें तीन चार मील जाना था। मुझे बेतरह भूख लगी हुई थी। एक पहाड़ी किसान अपनी स्त्री के साथ आ रहा था। मैंने उससे सत्तू मांगा। उसकी दयावती स्त्री ने फौरन तीन चार मुट्ठी सत्तू और दो आलूबुखारे के फल हमें दिये। मैंने जन्म से कभी सत्तू नहीं खाया था, आज चखा। ज़िसके द्वारा लाखों भारतवासी पेट की ज्वाला बुझाते हैं। धन्य मेरे भाग्य! जो मुझे भी अपने देश के निर्धन बच्चों का खाना नसीब हुआ! धारे पर बैठकर उसको खाया; क्या आनन्द आया। वाहरी भूख, सच्चा आनन्द तो भोजन का तेरे ही अन्दर है

पेट को कुछ शान्त कर फिर बढ़े। आधमील की और विकट चढ़ाई पड़ी। सड़क महा रद्दी! झरनों तथा नालों का पानी सड़क पर बह रहा था। दूर तक सड़क भीगी हुई मिली; मच्छर और मक्खियों की भरमार है। अब बेढव उतार आरम्भ हुआ। बीच बीच में पंचाचूली की बर्फानी चोटियां भी दीख पड़ती थीं। किसी प्रकार चलते चलते, टूटे फूटे पत्थरों पर लुड़कते पुढ़कते, सड़क को ऐसी गिरी दशा में रखने वाले अधिकारियों को कोसते हुये बढ़े चले गये। मनस्यारी आ गई। छः बजने वाले थे। सड़क पर कुछ लोग बड़े प्रेम से मिले। उनका मैं हृदय से धन्यवाद करता हूं। मुझ थके हारे के स्नान का प्रबन्ध किया। ठण्डे शीतल जल से बाहिर खुले में स्नान किया; बाद में घर के अन्दर गये। मेरे प्रेमिओं ने एक कमरे में मुझे ठहराया; उदासी को नीचे स्थान मिला। सामने पंचाचूली की चोटियां दिखाई देती थीं। मैंने उनको प्रणाम किया। आज हिमालय के पूर्वीद्वार के कंगूरों के दर्शन अच्छी प्रकार हुए। रात को दाल रोटी खाकर सोरहे।

२५ जून शुक्रवार—आज दिन भर आराम किया। थोड़ा समय वार्तालाप में ख़र्च किया। शिक्षा सम्बन्धी उपदेश कुछ भाइयों को दिया। यहां के लोग स्नान नहीं करते इस लिए उनके कपड़ों में भी बहुत जूएं होती हैं। मैंने इनसे कम्बल लेकर ओढ़ा, मेरे कपड़ों में भी सरसर जूएं चलने लगीं। दुपहर के बाद कुली मेरा असबाब ले आया था इसलिये अपने कपड़े झाड़झूड़ ठीककर मैंने अपनी चद्दर ओढ़ी। यहां बहुत अधिक सरदी नहीं। लोगों की पोशाक विचित्र है। एक लम्बा लबादा सा घुटनों से नीचे तक होता है; उस पर मध्य में पटका लपेटते हैं। कपड़े मैले कुचैले होते हैं। जो थोड़ा बहुत पढ़े लिखे हैं,

उन्होंने अंग्रेज़ी ढंग के कोट पहनने शुरू किये हैं। वाकी सब लवादा, पाजामा, पटका, टोपी पहनते हैं। लवादे के नीचे गरम कुरते फतुही आदि पहन लेते हैं। जिस किसी को देखो वही सूत कात रहा है। लट्टू सा हाथ में लिये हुये उस को घुमा घुमाकर ऊनी सूत कातते रहते हैं; छोटेसे वड़े तक का दिनभर यही काम है। वात करते जायंगे और कातना भी जारी रहेगा। सबके चेहरे मंगोलियन हैं; कोई कोई देखने में खूबसूरत भी होते हैं। यहां मक्खी मच्छरों की वहुतायत है। मैं तो घर के अन्दर ठहरा हुआ था, इस कारण कष्ट कम हुआ। जो लोग पहाड़ी धर्मशालाओं में ठहरते हैं उनको वड़ा कष्ट होता है। पहाड़ी धर्मशालायें वड़ी गन्दी होती हैं। प्रायः साधु लोग गुफाओं में ठहरते हैं। गुफायें इधर जगह जगह होती हैं। प्रकृति माता दयाकर अपने बच्चों के ठहरने के लिये ये सब सामान कर देती है।

आज रात को उस उदासी साधु से कुछ विगड़ गई। मेरा रुमाल, जिसमें कुछ नक़दी बन्धी थी, विस्तरे पर से किसी ने उठा लिया। उस रूमाल को मैंने उदासी महाशय के सामने रखा था। अपना शक होजाने के कारण मैंने उस भले मानस से कहा कि ऊपर गुफा में चरसीनाथ के पास जाकर ठहर जाइये। उसे वुरा लगा। वह वड़वड़ाता हुआ चला गया।

२६ जून शनिवार—आज भी आराम किया। थोड़ा वाहर घूमने गए। मनस्यारी वेढंगा सा ग्राम है। यहाँ के पशुओं की खाल पर वड़े २ वाल होते हैं। यहां मैंने पहिली वार झब्बू देखा। झब्बू पहाड़ी गाय और तिब्वती सांड़ (Yak) की सन्तति है। इसकी दुम चंवरगाय की तरह होती है। शरीर पर भी वाल होते हैं। यह लद्दू जानवर इन वर्फानी पहाड़ों में

वड़ा काम देता है। वेचारा वड़ा सीधा डरपोक जानवर है। यहां की स्त्रियां जापानी स्त्रियों की तरह बच्चों को पीठ पर लादे लादे काम करती हैं। कल चलने का निश्चय होगया।

आठवां पड़ाव

मनस्यारी से बागड्वार

२७ जून रविवार—मनस्यारी (गोरीफाट) में कई एक ग्रामों के समूह का नाम है। वहां जोहार भर का डाकघर है। पाठशाला भी है। जोहारियों के ऊपर नीचे जाने का यह अड्डा है। यहां से आज सवेरे मैं अकेला चला। मेरा असवाब मनस्यारी के एक सज्जन के पास था। वे अपनी भेड़ बकरियों के साथ पीछे पीछे आ रहे थे। दो मील के उतार के वाद मैं नीचे पोस्टआफिस के पास पहुंचा। यहां कुछ देर ठहर कर आगे वढ़ा। उदासी और चरसीनाथ भी आ पहुंचे थे। हम लोग तीनों वढ़े चले गये। वकरियों वाले धीरे धीरे आ रहे थे। अव रास्ता गोरी नदी के किनारे किनारे जाने का था। गोरी नदी की उछल कूद देखने लायक थी। पहाड़ों से भागी चली आ रही थी। ज्यों ज्यों आगे वढ़ते जाते थे गोरी नदी का रूप भयावना होता जाता था। इस ने पिता हिमालय से लड़झगड़ कर दुर्गम पर्वतों में से रास्ता काटा है। पहाड़ी सड़क खराव है। कहीं कहीं तो निहायत तंग, जहां से केवल एक मनुष्य मुश्किल से गुज़र सके और यदि कहीं पांव रपटे तो नीचे गोरी के काले पेट में समा जाय। वेढव उतार चढ़ाव है। पत्थरों की तंग सीढ़ियां यात्री का नाक में दम करती हैं। सैकड़ों सीढ़ियां चढ़कर ऊपर जाना, फिर सैकड़ों सीढ़ियों का उतार, सिर घुमा

देता है। सड़क बेतरह खराब है। मालूम होता है जैसे इधर किसी सभ्य गवर्नमेंट का राज्य नहीं है।

मैं अकेला आगे आगे जा रहा था। साथी सब पीछे धीरे धीरे आ रहे थे। एक स्थान पर पहाड़ी नाले के पास चट्टान पर शौच के लिये जो ऊपर चढ़ा तो एक प्रकार के वन्य पौधे के पत्तों से मेरी टांगें छूगईं। जीः! मानों बिच्छू काट गया। बड़ी जलन होने लगी। यह बिच्छू घास कहलाती है। पहाड़ों में यह बहुत होती है। सूखने पर इसके रेशों की रस्सियां बनाई जाती हैं। हरी हरी पत्तियों का शाक भी लोग खाते हैं। कई जलप्रपात देखने में आए। पहाड़ी नाले गोरी की सहायता कर उसका अभिमान बढ़ा रहे थे। गोरी का रंग तो श्वेत है, पर पेट की बड़ी काली है। इसमें बकरी या झब्बू गिर जाय तो बस गया। क्रोध से जली हुई जाती है मानो घर वालों ने पीट पाट कर निकाला है। पुलों को तोड़ मरोड़ कर फेंकना, पत्थरों को चकनाचूर कर देना, बकरी भेंड़ झब्बू को डकार जाना, ये इसकी करतूतें हैं। खूब लड़ती, झगड़ती, गालियां देती जा रही है। सड़क पर चलने वाले यात्री की छाती धक धक करने लगती है। ऐसे भयानक मार्ग से ये जोहारी हर साल कैसे जाते होंगे? यही सोचता हुआ मैं जा रहा था। परन्तु दृश्य बड़े मनोहर हैं। एक जगह गोरी ऊपर से नीचे कूदी है। वहां ऊपर चट्टानों की दरारों और सुरक्षित स्थानों पर मधुमक्खियों के सैकड़ों छत्ते देखने में आए। इन श्रमजीवी मक्खियों ने कैसा स्थान ढूंढ़ा है। मनुष्य जहां आध घंटा ठहरता हुआ डरने लगे; रात को जहां वीर मनुष्य भी डेरा करने से हिचकिचाए; उस वन्य स्थान में इन्होंने अपने

घर बनाये हैं। न जाने कब से इनकी बस्ती यहां पर है। ईश्वर की माया विचित्र है।

१२ बजे के करीब एक खुले स्थान पर पहुंचे। गोरी नदी के किनारे पर यहां कुछ चौरस ज़मीन है। इर्द गिर्द दोनों ओर ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं। नदी ने जहां जहां पर्वत को काटा है उसके चिन्ह देखने में आते हैं। पहले गोरी इस चौरस भूमि की ओर बहती थी और इस घाटी के बीच में से जाने का मार्ग था। भोटिए लोग ऊपर ऊपर पहाड़ों की चोटियों के निकट तक पहुंच कर, फिर भयानक उतार को पूरा कर तब पगडन्डी पकड़ते थे। बहुत ही दुर्गम पथ था। मनस्यारी के एक परोपकारी सज्जन ने अपने पास से रुपया खर्च कर बाँध बंधवा कर नदी को एक ओर करवा दिया है। अब बायें किनारे की ओर भूमि निकल आई है जहां व्यापारी आकर दम लेते हैं। और भोजनादि बनाते हैं। जो प्रेमी मेरे साथ था उसने मेरे लिये रोटी बना दी। नमक के साथ सूखी रोटी खाकर ठण्डा जल पिया और ईश्वर को धन्यवाद दिया। मुझे बैठा हुआ देख बहुत से डूमड़े मेरे इर्द गिर्द आकर खड़े हो गये। ये लोग सलाम करते हैं। मैंने उनको समझाया कि आप लोग राम राम किया करें, सलाम हमारी सभ्यता का सूचक नहीं है। वे मेरे उपदेश से बड़े प्रसन्न हुये। इन बेचारों के साथ इधर के हिन्दू बुरा सलूक करते हैं। इस लिये कइओं ने ईसाई मत की दीक्षा लेली है।

खैर, भोजन कर चल पड़े। गोरी के कई एक सहायक नाले रास्ते में मिले। उनकी बहार देखते हुये आगे बढ़े। रास्ते में बिच्छुझाड़ बहुत देखने में आया। इससे बचकर चलना पड़ता

था। जरा सा छू जाने पर जलन होने लगती थी। मुझे कई वार इसने वड़ा कष्ट पहुंचाया।

पांच वज चुके थे मालूम होता था जैसे विलकुल सन्ध्या होगई है, सामने वर्फानी चोटियों की झलक मात्र दिखाई देती थी। मैं अपने सव कपड़े पीछे छोड़ आया था, केवल एकही स्वीटर मेरे पास था। जब वागड्वार पहुंचे तो खासी सरदी हो गई। मेरे प्रेमी ने जाते ही ठहरने का प्रवन्ध किया। प्रवन्ध क्या किया ? एक वड़े पत्थर के ढोंके के नीचे गुफा सी बनी हुई थी उसी में जाकर बैठ गये। चट्टान जहां ऊपर से नीचे आने में अन्दर की ओर ढ़लवान हो जाती है वहीं गुफा सी वन जाती है। ऐसी ही गुफा में जाकर डट गये। एक छोटी सी धर्मशाला भी यहां पर है। उसमें डूमड़ों के परिवार ठहरे हुये थे; उनके पशुओं ने धर्मशाला को गन्दा कर रक्खा था। वागड्वार को आप एक जंकशन समझिये। गोरी का एक सहायक नाला गड़ गड़ करता हुआ उसमें आकर यहां मिलता है, उसी को पार करने पर जो त्रिकोण वनता है, वहीं हम लोग ठहर गए थे। दहिने हाथ गोरी और वायें हाथ पहाड़ी नाला, वीच के दोआव में वागड्वार है। यहां भोटियों का वहुत सा माल कई दिन पड़ा रहता है। हजारों रुपये का माल रास्ते में एक ओर रखा रहता है। कोई नहीं छेड़ता, सव अपने २ रास्ते चले जाते हैं। जिसका माल है वह उसके ऊपर एक पत्थर रख देता है वस इसीसे दूसरे व्यापारी भोटिये समझलेते हैं कि यह माल सहेजा हुआ है। कोई उसको छूता भी नहीं। मेरे प्रेमी केसरसिंह जी ने मेरे लिये एक दो कम्वलों का प्रवन्ध कर दिया, खाने के लिए चावल और सूखी मूली की तरकारी बनादी, उसीसे कुछ पेट पूजा हुई। आज पहली वार मैंने भोटिया

चाय का एक घूंट पिया। मुझे इनकी चाय बिलकुल अच्छी नहीं लगी, ये लोग अपनी चाय में चीनी की जगह नमक और दूध की जगह घी डालते हैं। इनको यही अच्छी लगती है। अपनी २ रुचि है। आठ बजे के करीब चरसीनाथ भी भूले भटके आ निकले। इनको जौंकों ने रास्ते में बेतरह सताया। बेचारे रास्ता भूलकर अबतक पहाड़ों में भटकते रहे थे। उनका भी प्रबन्ध किया गया। रात कट गई।

नवां पड़ाव

बर्फ़ का मार्ग

२८ जून सोमवार—सवेरे चल पड़े। आज रास्ता और भी दुर्गम मिला। गोरी के ऊपर बर्फ़ पड़ी हुई थी। नीचे गोरी नदी, ऊ[illegible] पुल—कैसा नवीन दृश्य देखने में आया। उस बर्फ़ के ऊपर, धीरे धीरे लकड़ी के सहारे चले। केसरसिंह जी की सहायता से निकल गए। सर्दियों में तो यह घाटी बर्फ़ से ढकी रहती है और कोई मनुष्य, पशु मनस्यारी से मीलम आ जा नहीं सकता। जब अप्रैल के आरम्भ में बर्फ़ पिघलनी शुरू होती है; तो धीरे धीरे घाटी का मार्ग खुलता है। जून के अन्त तक कहीं कहीं गहरे में बर्फ़ जमी रहती है। व्यापारी लोग उसी पर से होकर आते जाते हैं। कई बार ऐसा होता है कि बर्फ़ नीचे से नर्म होगई, किसी भोटिए ने उसको तोड़ कर रास्ता ठीक करना चाहा, पैर फिसल गया और वह बेचारा नीचे गोरी नदी में पहुंच गया। फिर उसका पता कहाँ! यही कारण मेरे धीरे धीरे जाने का था।

चलते चलते, उतार चढ़ाव पूरा करते पांच मील गए। अब तक मुझे रास्ता चलते समय बहुत पसीना होता था

और मेरे कपड़े भीग जाते थे, मगर आज पसीना नहीं आया यह तेज़ हवा की कृपा थी। बड़ा तेज़, ठण्डा वायु इन पर्वतों पर चलता है। यदि यात्री सावधान न हो तो पैर से उखाड़ कर नीचे घाटी में गिरा देता है। खैर पांच मील चल कर गोरी के एक और सहायक पहाड़ी नाले के पास पहुंचे। उस नाले का पुल बंधवाने वाले ठेकेदार के पास जाकर ठहरे। धूप निकल आई थी; आकाश निर्मल था। बर्फानी जल में स्नान किया। ठेकेदार के ब्राह्मण नौकर ने भोजन बनाया और मुझे बड़ी श्रद्धा से खिलाया।

भोजनोपरान्त आगे का रास्ता लिया। बकरी, भेड़ें ले जाते हुए भोटिए व्यापारी बराबर आते हुए मिले। अब अच्छी ऊंचाई पर आगये थे। ग्यारह हजार फीट की ऊंचाई से क्या कम होंगे। चारों तरफ़ पहाड़ों की चोटियों पर थोड़ी बहुत बर्फ पड़ी हुई थी। उनमें से जल की श्वेत धाराएं निकल निकल कर गोरी नदी से मिलने के लिये उछलती कूदती जारही थीं। एक चौरस पहाड़ी मैदान में पहुंचे। यहां आटा पीसने की चक्की लगी हुई है। यहां का एक निवासी मिला जो वर्षा न होने की शिकायत कर रहा था। मुझे बड़ी हंसी आई। इतने नाले इर्द गिर्द बह रहे हैं। इन्हें इतनी बुद्धि नहीं जो नालों से जल लेकर पृथ्वी सींच लें। वर्षा के सहारे बैठे हैं। सच है मूर्ख के पांओं के नीचे चाहे खज़ाना हो पर उसको उससे कुछ लाभ नहीं। विद्वान पुरुष ही उसको खोद कर काम में ला सकता है। इसी तरह यहां के लोग हैं। इतनी चौरस भूमि में जल पहुंचा कर अनाज पैदा कर सकते हैं किन्तु उतनी इनको बुद्धि नहीं जो कुछ बाबा आदम से चला आता है वही इनके लिए ठीक है।

इस पनचक्की वाले गांव से निकल कर आगे बढ़े। कुफू का

गांव अब निकट ही था। पहाड़ी रास्ता घूमकर जो ऊपर चढ़े तो सामने बर्फ से लदी हुई तीन चार चोटियाँ दिखाई दीं। यही द्वारपाल हिमालय के श्वेतभवन के कंगूरे हैं। आज पहिली बार इतने निकट से इनके दर्शन हुए। प्रभु को धन्यवाद दिया।

बुर्फू की ओर जाने वाला रास्ता बहुत खराब है। कच्चा पहाड़ है; बर्फ ने इसको चूर चूर कर दिया है। जैसे किसी पहाड़ी चट्टान के नीचे बारूद लगा देने से उसके भाग छिन्न भिन्न होजाते हैं यही दशा यहां मैंने देखी। रास्ते की यह दशा कि यदि एक छोटा सा पत्थर फिसल पड़े तो पाओं के नीचे की बजरी निकल निकल कर नीचे बही चली जाती है और प्राण बचाना कठिन हो जाता है। आप पूछेंगे कि यह रास्ता पक्का नहीं है? पक्का कैसे हो। जब शीतकाल में इर्द गिर्द के पहाड़ बर्फ से ढक जाते हैं और यह घाटी भी हिम से सफेद हो जाती है तो बर्फ इन पहाड़ों के साथ बड़ी निर्दयता का व्यवहार करती है। जैसे सांप किसी पशु को अपनी लंबी देह से फांस कर उसको जकड़ लेता है और पशु की हड्डियां तोड़ डालता है, इसी प्रकार यह हिम भी करती है। वर्षा ऋतु में पानी पर्वतों के छिद्रों में भर जाता है। अक्टूबर में बर्फ पड़ने लगती है। नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी और फरवरी—इन चार महीनों के कड़कड़ाते जाड़े में—उन छिद्रों का जल, बर्फ बनकर अपना आकार बढ़ाता है। वे छिद्र फट जाते हैं; उनकी सङ्गठन शक्ति जाती रहती हैं; वे अलग अलग हो जाते हैं। मार्च अप्रैल में जब बर्फ पिघलती है तो बड़े बड़े बर्फ के ढोंके चोटिओं से खिसकते हैं, वे अपने जगह से चलते हैं। किस की शक्ति है जो उनका रास्ता रोक सके। सब को पीसते हुए बड़ी गर्जना करते हुए वे नीचे घाटी में आवे हैं। सड़क के

पत्थरों और नदिओं के पुलों को तोड़ते हुए गोरी में पहुंचते हैं। भला इनके आगे सड़क क्या ठहर सकती है वे उसकी हड्डी पसली तोड़ देते हैं। हर साल सड़क की मरम्मत हो, तब काम चलता है। इन बेचारे भोटिओं को यह सब सहना पड़ता है।

शाम को बुर्फू पहुंच गये। गोरी नदी का पुल पारकर, मील भर की चढ़ाई चढ़ कर गाओं में पहुंचे। बुर्फू पुराना ग्राम है। दो सौ घरों की बस्ती होगी। यहां आजकल सब घर भरे थे। मनस्यारी तथा उसके इरद गिरद गोरीफाट के ग्रामों के लोग अपने परिवारों सहित गरमियों में मल्लाजोहार में आजाते हैं। स्कूल भी इन दिनों में खुल जाता है। छोटे छोटे फुर्तीले भोटिया लड़कियां लड़के इधर उधर खेल कूद रहे थे। मैं धर्मशाला में जाकर ठहरा। यहां भी मेरे आने की खबर थी इसलिये सब प्रवन्ध होगया। लोग मिलने के लिये आए। उनको जुए की बुराइयां, सदाचार की महिमा तथा शराब के दोष समझाए। हाथ, पैर, मुंह धोकर परमात्मा की प्रार्थना की, तदुपरान्त पांच चार कम्बल ओढ़ कर सो गये।

दसवां पड़ाव

मीलम का मार्ग

२९ जून मंगलवार—रात जूओं के मारे बड़ी कठिनाई से कटी। इन भोटिओं के कपड़ों में बहुत जुएं होती हैं। ये लोग स्नान कम करते हैं और सफाई पर विशेष ध्यान नहीं देते, इसलिये इनके कपड़ों में कृमि पड़ जाते हैं। जो कम्बल मैंने इन लोगों से लिए थे उनमें सर सर जुएं चलतीं थीं। क्या किया जाता किसी प्रकार रात बिताई।

सात बजे सवेरे एक डूमड़े का लड़का पथप्रदर्शक के तौर पर साथ हो लिया। रास्ते से अनभिज्ञ होने के कारण उसकी ज़रूरत थी। केसरसिंह मेरे साथ बुर्फू नहीं आये थे, वे मीलम पहुंच गये। रास्ते से भली प्रकार परिचित होने के कारण उन्हों ने संध्या को ही अपना मार्ग तै कर लिया और अपने घर में जाकर आराम से सोए।

मैं उस डूमड़े के छोकरे के साथ होलिया। आज गोरी के दहिने किनारे चले। किनारे से यह मत समझिये कि बिलकुल किनारे ही, गोरी से कमसे कम चारसौ फीट की ऊंचाई पर की पगडन्डी पर जा रहे थे। दो मील पर बिलजू नाम का ग्राम है। वहां पहुंचे। औरतें पहाड़ी नदी से तांबे के मटकों में पानी भर भर कर अपने घरों को ले जा रही थीं। छोटे २ लड़के गलिओं में खड़े मुझे देख रहे थे। उनकी भोली भाली मंगोली सूरत, पुष्ट हाथ पैर, गठीला बदन चित्त को प्रसन्न करता था। "मैंने सोचा—"कैसी अच्छी सामग्री यहां पर देश भक्तों के लिये है। इन पर्वतों पर से क्या क्या काम नहीं हो सकते। थोड़ी जागृति चाहिये। यही बालक कट्टर देशभक्त बन कर माता का दुख दूर कर सकते हैं"। मन के साथ इस प्रकार की बातें करता हुआ चला। आगे बढ़कर नन्दा देवी के भव्यदर्शन हुये। एक रास्ता नन्दाकोट को बायें हाथ की ओर से गढ़वाल जाता है। उसी रास्ते में ठीक सामने, आकाश से बातें करती हुई, सफेद चमकती हुई दो चोटियां दिखाई देती हैं। मीलम जाने वाली पगडण्डी से ये दोनों चोटियां बिलकुल पास मालूम होती हैं। इन दिनों आकाश निर्मल रहता है। नीले आकाश में, उन्नत मुख किये, नन्दादेवी साभिमान खड़ी है। बायें ओर 'बनकटा' नाम की चोटी है,

उसकी आकृति कुल्हाड़े जैसे होने से उसका ऐसा नाम पड़ गया है। मैं उस चोटी का नाम परशुराम रखता हूं।

नन्दा देवी को प्रणाम करने के बाद मैंने परशुरामजी को नमस्कार किया और उनकी शोभा देखी। कई एक विकट स्थानों को कूदते फांदते एक पुल के पास पहुंचे। यह पुल गोरी की सहायक नदी वक्खा पर बँधा है। इसको देखने से भी डर लगता है; बड़ी बिगड़ी हुई नदी है। इसके कमजोर पुल पर डरते डरते पांव रक्खा। पार करने के बाद ईश्वर को धन्यवाद दिया। अब मीलम के मैदान में पहुंच गये। सामने पर्वत के नीचे घाटी में पत्थरों के मकान दिखाई देते थे। सामने बढ़े। खिलखिलाती धूप बड़ा सुख दे रही थी। सूर्यदेव हंस हंस कर प्रकाश डाल प्रकृति का सौन्दर्य बढ़ाते थे। उनकी तरफ पर्वतों पर वर्फ पड़ी थी। कुछ दूर उत्तर पश्चिम में वर्फ से लदी हुई चोटियां अपनी अनोखी छटा दिखा रहो थीं। कहना क्या, चारों ओर वर्फानी चोटियों से घिरे हुये इस मीलम ग्राम में मैंने प्रवेश किया। भारतवर्ष का इस ओर यह अन्तिम ग्राम है, इसके आगे हिमालय का श्वेतभवन है, जिसको लांघकर तिब्बत जाना पड़ता है। आइये पाठक, मीलम घाटी में प्रवेश करें और पूज्य हिमालय के श्वेत भवन में जानेकी तय्यारियां करें।

ग्यारहवां पड़ाव

मीलम

मीलम तीन सौ घरों का ग्राम है। सब मकान पत्थर के हैं। जब मैंने ग्राम में प्रवेश किया तो नौ बजने वाले थे। झूमड़े के छोरे को मैंने वापिस बर्फू भेज दिया। [illegible] मुझे

बड़े प्रेम से मिले। केसरसिंह जी भी यहां मौजूद थे। उन्होंने रायबहादुर कृष्णसिंह जी *के मकान में मेरे ठहरने का प्रबन्ध कर दिया। रायबहादुर साहब बड़े सज्जन पुरुष हैं। वे संसार के उन साहसी पुरुषों में से हैं जो अपनी जान को हथेली पर रख कर मनुष्य मात्र के लाभ के लिये पृथिवी के कठिन भागों की खोज करते हैं। उन्होंने तिब्बत में घूम घूम कर वहां के नकशे तय्यार किये हैं। यदि वे किसी यूरोपियन देश में उत्पन्न होते तो सारा सभ्य संसार उनके गुणों से परिचित होता। और वे एक प्रसिद्ध (Explorer) अन्वेषक माने जाते। मैं उनके विषय में अधिक आगे चलकर लिखूंगा।

गोरी नदी के किनारे मुझे ठहरने को स्थान मिला। कई एक विद्यार्थी आकर इकट्ठे होगये। उन्होंने मकान झाड़ने बुहारने में सहायता दी। दो जने मेरे साथ गोरी पर गये। बर्फ के टुकड़े नदी में बहे आरहे थे। कैसा ठण्डा जल होगा, पाठक अनुमान कर सकते हैं। उस जल से मैंने स्नान किया और अपनी थकावट मिटाई। नहा धोकर अपने मकान पर आये और भोजन किया।

कैसा अच्छा स्थान है। आजकल तो यहां आनन्द है, मक्खी मच्छर खटमल बिच्छू कुछ नहीं। खिलखिलाती धूप में बाहर घास पर चटाई बिछाकर मैं लेट गया। धूप कैसा अच्छी मालूम होती थी। इस जून के महीने में यहां पूष माघ से अधिक सर्दी पड़ती है; खाने का खूब मज़ा आता है। ऊंचाई बारह हजार फीट से अधिक है इस लिये वृक्षों का यहां अभाव ही है; घास होता है। सामने पहाड़ों पर झाड़ियों जैसे सरु का

---

* शोक है कि रायबहादुर कृष्णसिंह जी का कुछ वर्ष हुए, देहान्त हो गया है। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे—लेखक

जंगल दिखलाई देता था। सरदी के मारे वनस्पति भी अपनी माता पृथ्वी के गर्भ में घुसी पड़ती है। आनन्द है! आनन्द है!! धूप का खूब आनन्द लूटा। शाम होगई। भोजनोपरान्त सो गये।

३० जून से ११ जौलाई रविवार तक—ग्यारह बारह दिन मीलम में रहे। खूब घूमे। गोरी नदी का बर्फानी पहाड़ (ग्लेशियर) पासही है। एक दिन सवेरे, मैं अपने स्नेही श्री खड्ग राय जी के साथ गोरी नदी के किनारे किनारे उसका ग्लेशियर देखने गया। मेरे स्थान से यह वर्फ का पहाड़ सवा मील पर होगा। घूमते २ चले गये। सामने ऊंची काली काली पंहाड़ी के बीच में से गोरी आरही थी। जैसे पर्वत काटकर बड़ी बड़ी सुरंगें रेल जाने के लिये बनाई जाती हैं, ऐसी ही सुरंग के सामने हम दोनों पहुंच गये। बर्फ पर चढ़ना शुरू किया। वर्फ का पहाड़ काला क्यों? कारण यह था कि इर्द गिर्द के पहाड़ों पर से फिसलकर आने में वर्फ अपने साथ बहुत से पत्थर मिट्टी ले आती है, वर्फ तो पिघल कर नीचे नदी में जा रही है, मिट्टी पत्थर वेचारे अपनी भौंड़ी सूरत में ऊपर रह जाते हैं। यही उस पहाड़ का कालापन नीचे ठोस, किन्तु सफ़ेद बर्फ जमा हुई है। कई नाले ऊपर पर्वतों से भाग भाग कर इसमें मिल रहे हैं। उनकी भी सुरंगें बनी हुई थीं जिन में यदि कोई गिर जाते तो फिर जीता निकलना असंभव है। इधर उधर घूम कर इस निर्जन पर्वत को देखा। मालूम होता है कि यह ग्लेशियर बहुत बड़ा था। मीलम वासी भोटिए भी यही कहते हैं कि यह ग्लेशियर मीलम के बिल्कुल पास था। धीरे धीरे वर्फ पिघली जा रही है और ग्लेशियर पीछे हट रहा है। वर्फ के चिन्ह पहाड़ों पर बने हुये हैं, नीचे नीचे हटने की लकीरें साफ दिखाई देती हैं।

दो घंटा इधर उधर घूमकर मैं अपने प्रेमी के साथ लौट आया। रास्ते में एक चरवाहा भेड़ें चराता हुआ मिला। इधर इन पहाड़ों पर उसी जंगली झाड़ियों को खाकर भेड़ें और बकरी खूब मोटे होते हैं। मैंने उस चरवाहे से यह सब बातें पूछो। यद्यपि वह बिल्कुल अशिक्षित था पर बातें समझ की करता था। शिक्षा फैलने से ये लोग भी अच्छे चतुर हो सकते हैं।

गोरी, मीलम के उत्तर पश्चिम, गढ़वाल की तरफ से आती है। गढ़वाल और अल्मोड़ा की सीमा बर्फानी चोटियों से घिरी है। मीलम के पश्चिम गढ़वाल की तरफ नन्दादेवी २५८५० फीट ऊंची आकाश से बातें कर रही है। उसकी पंद्रह सखियां ऐसी हैं जो प्रत्येक बीस हज़ार फीट से अधिक ऊंची हैं। नन्दादेवी के दक्षिण की ओर त्रिशूल की तीन ऊंची चोटियाँ हैं; जो २३००० फीट से भी अधिक ऊंची हैं, दक्षिण पूर्व की तरफ नन्दाकोट २२६५० फीट ऊंचा अपना जोबन दिखा रहा है। इस प्रकार मीलम के पास हिमालय के श्वेत भवन के कई एक प्रसिद्ध कंगूरे हैं। गोरी की गड़गड़ चौबीस घंटी रहती है, और उसी के द्वारा दो तीन, पनचक्कियां आटा पीस पीस कर मीलमवालों की सेवा कर रही हैं। लोग इसी गोरी का मैला पानी पीते हैं और इसे बड़ा गुणकारी बतलाते हैं। घाटी के बीच एक तरफ उत्तर पूर्व की ओर ग्राम बसा है। दक्षिण की ओर पहाड़ के नीचे गोरी बहती है। दो मील दक्षिण की ओर नदी के किनारे पांच ग्राम और हैं। तीन मील पूर्व की ओर बिलज ग्राम है। यहां मीलम में लन्दन मिशन की ओर से पादरी भोटिये व्यापारियों के साथ साथ जून में ऊपर आजाते हैं, और सेपटेम्बर में नीचे चले जाते हैं। इनका

एक बड़ा अच्छा बंगला* बना है, काम इन बेचारों का अब ढीला होगया है कहते हैं पहले इनका अच्छा ज़ोर था। जब कुछ वर्षों तक परिश्रम करने के बाद कुछ विशेष परिणाम न निकला तो लाचार होकर मिशन ने ख़र्च कम कर दिया, अब साधारण तौर पर कार्य होता है। जो मिशनरी आजकल यहां हैं वे सज्जन पुरुष हैं। मेरे साथ उन्होंने बहुत अच्छा सलूक किया।

मीलम के उत्तर से बक्खा नदी आकर गोरी से मिली है और एक नदी नन्दादेवी से निकल कर गोरी की सहायक बनी है। यहां कोई अच्छी दूकान नहीं, सब नीचे से अपने २ काम के लिये रसद सामान लाते हैं। कई कई महीनों का सामान साथ रखना पड़ता है। भाजी तरकारी सुखाई हुई साथ रखते हैं। औरतें बड़ी मज़बूत और मेहनती हैं, गोरी नदी से पानी भर कर लाती हैं और घर का सारा काम बड़े सुचारु रूप से करती हैं।

मैंने यहां पर व्याख्यान दिए, शिक्षा की उपयोगिता तथा अमली धर्म के सिद्धान्तों को समझाया। लोग बड़े प्रसन्न हुये यहां कई एक पहाड़ी यात्री आकर इकट्ठे होगये थे। भोटिए लोगोंने इनकी यथाशक्ति सहायता की। पांचचार साधुभी नीचे मैदान से यात्रा के लिये आ गये थें, उनको भी इन लोगों ने कम्बल दिये, गुड़ सत्तू का भी प्रबन्ध कर दिया। मुझे भी कपड़ों की ज़रूरत थी क्योंकि मैं अपने साथ बहुत कम कपड़ा लाया था। श्री विजयसिंह पांगटी बड़े धर्मात्मा सज्जन हैं। उनके भाई भी बड़े योग्य व्यक्ति हैं। उन्होंने तथा प्रेमी खड्ग राय जीने मिलकर मेरे लिये सब प्रबंध कर दिया। एक अच्छा

* मैंने सुना है कि अब यह बंगला बिक गया है। लन्दन मिशन का मीलम में अब कोई नामोनिशान नहीं रहा।

गरम कश्मीरे का ओवरकोट वनवाया। श्री खुशहाल सिंह बूढ़ा और श्री दीपसिंह ने भी हाथ वटाया। मुझे जो सामान दरकार था उसका प्रवंध इन भोटिये सज्जनों ने प्रसन्नता पूर्वक कर दिया, जिसके लिये मैं इन भाइयों का वड़ा कृतज्ञ हूं। यदि ये लोग हाथ न वटाते तो मेरी तिब्वतयात्रा कुशल पूर्वक कभी नहीं हो सक्ती थी।

ग्यारह वारह दिन मीलम में रहकर अपनी विकट यात्रा की तय्यारियां करते रहे। भोटिए लोग भी अपने माल असवाव लादने की झोलियां सीने तथा अपने परिवार के लिये तीन महीने का सामान जुटाने में लगे थे। तिब्बत की यात्रा करना मानो यमलोक जाकर लौटना है। उसके लिये पूरा सामान करना पड़ता है, जंगल से लकड़ी काटकाट कर इकट्ठी करनी पड़ती है। क्योंकि जव भोटिये व्यापारी तिब्वत चले जाते हैं तो मीलम में सिवाय उनका स्त्री वच्चों के और कोई नहीं रह जाता। कोई वीमार वुड्ढा भलाही रह जाय, नहीं तो प्रायः सभी पुरुष व्यापार करने जाते हैं। तिब्वत से कई हुणिए हिमालय पार कर अपनी भेड़ें मीलम में ले आते हैं और उनकी ऊन वेचकर अनाज और कपड़ा ले जाते हैं। ये लोग अपने अपने व्यापारी के यहां जाते हैं और कोई भोटिया व्यापारी किसी दूसरे तिब्वती व्यापारी को वहका कर अपनी ओर लाने का यत्न नहीं करता; अपनी मरज़ी से कोई किसी को छोड़ दे, यह दूसरी वात है। इनके व्यापार के नियम वंधे हैं। मेरे सामने दो चार तिब्वती सैकड़ों भेड़ों को लिये हुये आये थे। इनकी भेड़ें वड़ी फुरतीली और चंचल होती हैं। हुणिये खाल के लम्बे लम्बे वक्खू पहनते हैं। कमर वंधी रहती है। ये लोग महागन्दे और भयानक आकार के होते हैं। सिर नंगे, चीनिओं की तरह लम्वी

चोन्दी लटकाये रहते हैं। मज़बूत लम्बे लम्बे सन अथवा चमड़े के जूते पहनते हैं, गालों पर हिमालय की काटने वाली ठण्डी हवा से बचने के लिये एक प्रकार की औषधि लगाते हैं। जिन राक्षसों का वर्णन रामायण में पढ़ा करते थे, ठीक वैसेही ये लोग देखने में आये। गन्दगी से इनको किसी प्रकार की घृणा नहीं। रात को खुले में आकाश के नीचे ये लोग अपनी भेड़ों के बीच में मिट्टी पर ही सो रहते हैं। इनका रहन सहन, रङ्ग ढंग, चालढाल आदि का वर्णन आगे चलकर करूंगा, क्योंकि इनके देश में तो पहुंचना ही है।

इधर का राज्य प्रबन्ध पटवारी के हाथ में है, जिसको सब प्रकार के अधिकार रहते हैं। पोस्ट आफिस मनस्यारी में है, पर भोटिए व्यापारिओं के मीलम आजाने पर एक डाकिया बराबर मनस्यारी से मीलम और मीलम से मनस्यारी डाक पहुंचाता है। सप्ताह में दो बार डाक आजाती है। पोस्ट आफिस का प्रबन्ध बड़ा अच्छा है, किन्तु डाककर्मचारियों की तनख्वाह बहुत थोड़ी है। डाक बांटने वाले बेचारे इन विकट पर्वतों को लांघकर डाक पहुंचाते हैं—वर्षा हो या अन्धेरी—इनके लिये सब बराबर है, तिस पर भी सात आठ रुपये ही इनके लिये बहुत काफी समझे जाते हैं। कम से कम बारह रुपए महीने से इनकी तनख्वाह प्रारम्भ होनी चाहिये, और बराबर तीसरे वर्ष तरक्की मिलनी उचित है।

एक दिन मैं अपने दो प्रेमिओं के साथ फिर नन्दा देवी देखने गया। दस बजे के बाद हम लोग अपने स्थानों से चले होंगे। मीलम के पास गोरी के पुल को पार कर रास्ता जाता है। नदी के किनारे किनारे बातें करते हुए चले गए। बिलजू

से मीलम आने में जिधर नन्दादेवी जाने का रास्ता देखा था उधरही आज जाना था। नन्दादेवी के ग्लेशियर से एक नदी निकलकर गोरी से मिलती है; उस संगम पर एक ग्राम बसा है, वहीं पहुंचे। ग्रामवालों से प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया। यहां से पहाड़ी पथप्रदर्शक को साथ ले नदी पारकर, पहाड़ पर चढ़ना शुरू किया। अभी बहुत दूर नहीं गए थे कि थकान लगने लगी; जरा दस कदम जाते, झट दम फूलने लगता था। हिम्मत कर थोड़ी दूर और बढ़े तो विष चढ़ने लगा। इधर हलाहल विष का पौधा होता है, उसकी गन्ध से विष चढ़ जाता है। एक ऊंचे करारे पर बैठ गए। सामने नन्दा देवी बादलों से ढकी थी; आज आकाश में कुछ कुछ बादल थे। आध घंटा उस करारे पर इस आशा में बैठे रहे कि नन्दा देवी शीघ्र अपने आमोद प्रमोद से छुट्टी पाजाए तो हमें उससे वार्तालाप करने का अवसर मिले, किन्तु ऐसा न हुआ। निराश होकर हम लोग लौट पड़े। रास्ते में भोज पत्र का पेड़ देखा। उसकी छाल कागज़ की तरह होती है, और एक परत पर दूसरी परत निकलती चली आती है। ग्राम के निकट घाटी में खेतों को देखते हुए मीलम की ओर चले। दोपहर के करीब थके हारे घर पहुंचे।

मीलम में एक सरकारी स्कूल है। शिक्षा का धीरे धीरे प्रचार हो रहा है। शिक्षा के प्रचार से इन लोगों में जागृति भी हो रही है। हिन्दी के समाचार पत्र, बंगवासी आदि, आते हैं। अंग्रेज़ी के समाचारपत्रों के पढ़ने वाले भी होते जाते हैं। आर्यसमाज के सिद्धान्तों का भी थोड़ा बहुत प्रचार इधर भोट में धीरे धीर हो रहा है। तात्पर्य यह है कि प्रबुद्ध भारत के मधुर

राग की ध्वनि इन पहाड़ों में भी सुनाई देने लगी है। क्यों न हो, बेतार का तार तो हिमालय के श्वेतभवन में लगाही है।

बारहवां पड़ाव

हिमालय के श्वेत भवन की ओर प्रस्थान

१२ जौलाई रविवार—आज मीलम से चलने की तय्यारी थी। दूसरे पहाड़ी यात्री और साधु तो मुझसे पहलेही चल दिए थे। कैलाश जानेवाला यात्री स्वयं अकेला हिमालय पार कर तिब्बत नहीं जा सकता, उसको भोटिओं के साथ जाना आवश्यक है। प्रथम तो कोई ख़ास रास्ता उधर जाने का बना हुआ नहीं, यदि रास्ता हो भी तो अकेला यात्री उन बर्फानी पर्वतों को पार करने से सर्वथा असमर्थ है। भोटिए व्यापारी भी मिलकर चलते हैं; उनको भी अकेले में अपने प्राणों का भय रहता है। जौलाई के आरम्भ से दो चार व्यापारी रोज़ अपनी भेड़ बकरी लादे हुए उत्तर की ओर मुंह करते हैं। यात्री लोग भी अपनी अपनी सुविधानुसार इनके साथ हो लेते हैं। जिस किसी के साथ जिसका समझौता होजाता है वह उसीके साथ चल देता है। मुझे विजयसिंहजी पांगटी के साथ जाना था; उन्होंने बारह जौलाई अपने जाने की तिथि निश्चित की थी, इस कारण मुझे भी तब तक ठहरना पड़ा।

आइए पाठक, मनस्यारी से मीलम और मीलम से ऊँटाधुरा की ओर एक दृष्टि डालें। गोरी के किनारे २ कैसे कठिन रास्तों से हम लोग आये हैं। चीड़, अगर, सुराही, बांझ आदि पेड़ों को देखते हुये, जल-प्रपातों का आनन्द लेते हुये, मीलम में पहुंचे

थे। वहां से गढ़वाल यद्यपि बिलकुल निकट है पर उधर जाना कैसा कठिन है। मीलम से गढ़वाल जाना मानों मौत का सामना करना है। एक ओर गढ़वाल की सीमा के दुर्गम पर्वत, दूसरी ओर पंचाचूली की पर्वत माला, सिर पर, उत्तर में कुङ्गरी बिङ्गरी आदि चोटियाँ, दक्षिण में गोरी नदी की भयानक घाटी, इस प्रकार मीलम के इर्द गिर्द प्रकृति ने कैसी अभेद्य दीवारें खड़ी की हैं, और उसको चारों ओर से सुरक्षित किया है। वर्ष में सात महीने तो कोई किसी प्रकार भी इसमें घुस नहीं सकता। सूर्य देव की कृपा से इधर जोहार में केला, नीबू, नारंगी आदि फल और धान, मड़वा, जौ, गेहूं, बासमती, बीनस, ऊगल, मूली, फाफर, आलू आदि अनाज और सबज़ी भी पैदा होती हैं, जिनसे भोटिओं का पालन होता है। घाटीमें आलू ज़ियादा होता है। मीलम के पास गोरी नदी के गल से दो मील के फासले पर शांडिल्य ऋषि का कुण्ड है। वहां जन्माष्टमी के रोज़ बड़ा मेला लगता है। इर्द गिर्द के ग्रामों से पहाड़ी औरतें वहां बहुत जाती हैं।

आखिर चलने की घड़ी आगई। विजयसिंह जी ने अपने सम्बन्धियों से मिलने मिलाने में देर करदी। हिमालय पार जाकर लौटना, इन लोगों के लिये ऐसा ही है, जैसा कि मृत्यु लोक से वापिस आना। मैं सुना करता था कि रेल होने से पहले हरिद्वार, काशी, गया आदि तीर्थों पर जाने वाले यात्री अपने घरवालों से विदा होते समय यह सोचा करते थे— "देखिये तीर्थयात्रा कर जीते घर लौटते हैं या नहीं।" इसका दृश्य मैंने यहां पर देखा। अपने घरवालों से जुदा होते समय भोटिए लोगों के चित्त में भी यही भाव रहता है। मैं तो मिश-

नवालों का बंगला देखने चला गया और विजयसिंह जी अपने घरवालों को समझाने बुझाने में लगे रहे।

ग्यारह बजे के बाद ठीक तैय्यारी हुई। विजयसिंह जी की खच्चरें और उनके आदमी आगे बढ़ गये। मैं और पांगटी जी इकट्ठे चले। अब हमको बक्खा के किनारे किनारे जाना था। बक्खा नदी गोरी की छोटी बहिन है। इसके ऊपर दोनों ओर जो पहाड़ियां हैं वे गिद्धों की तरह हम लोगों की ओर देख रही थीं। लंबी २ गरदनों वाली ये पहाड़ियां मानो अब ऊपर झपटना ही चाहती हैं, जरासा कहीं से कोई पत्थर का टुकड़ा हिला, बस फिर इनकी कतार चली। धां! धां!! की आवाज़ से कलेजा कांप उठता है। बक्खा नदी की भूख को यही पहाड़ियां मिटाती हैं। मुझे तो यह रास्ता बड़ा भौंड़ा मालूम हुआ। ऊपर दृष्टि डालने से ठूंठ के ठूंठ दिखाई देते थे। ये सब मायावी राक्षसों के विहार का फल है। जहां कहीं वे अपनी श्वेत पादुका पहिन कर विहार (Skating) करने के लिये निकलते हैं वहाँ ठूंठ ही ठूंठ रह जाता है।

बक्खा नदी पर कई जगह बर्फ का पुल देखने में आया। विजयसिंह जी एक खच्चर मेरी सवारी के लिये लाये थे। उसका प्रबन्ध रायबहादुर कृष्णसिंह जी ने कर दिया था। आसान रास्ते में जहां गिरने का डर कम रहता, वहां मैं खच्चर की सवारी कर लेता था। बेढंगे, कच्चे, बे सिर पैर की जगहों में मैं पैदल चलता था। इस प्रकार बड़ी कठिनाई से पांच मील पूरे किये, और बक्खा का बर्फ़ानी पुल पार कर दूसरे किनारे ऊंची पहाड़ी पर चढ़ गये। यहां कुछ चौरस भूमि आगई थी। आज यहीं ठहरने का निश्चय किया। तम्बू खड़े कर दिये और

बिस्तरे लगा बैठ गये; और भी कई एक डेरे यहां पड़े थे। यद्यपि काफी ऊंचाई पर आ गये थे, परन्तु हिमालय का श्वेत भवन अभी यहां से कुछ मील दूर था। रात को भोजन कर आनन्द से सो रहे।

१३ जौलाई मंगलवार—आज दिन भर यहीं रहे। बादल घिर आये थे। वर्षा होती रही। विजयसिंहजी के पास आंधी, शीत, वर्षा, ओले सभी से बचने का आवश्यक सामान था। नौकर भी उनके साथ थे। दिन भर पाल में बैठे रहे। रात को उपदेश हुआ।

तेरहवां पड़ाव

श्वेत भवन के दिव्य दर्शन

१४ जौलाई बुधवार—आज पूज्य हिमालय के श्वेत भवन में प्रवेश करने का दिन था। प्रवेश-टिकट मिल गये थे। दिन भी निर्मल था। सवेरे सूर्योदय से पहले ही चल पड़े। मैंने ओवरकोट और मोटा गरम पाजामा पहन लिया; सिर पर कानपुरी ऊनी कनटोप ओढ़ लिया, खूब तैयार होकर खच्चर पर चढ़ बैठा। सब लोग चल पड़े।

पहले दुङ्ग पहुंचे। यहाँ पर ऐसा मालूम हुआ मानो बड़े सुदृढ़ किले की दीवारों के नीचे खड़े हैं। उन दीवारों के बीच में से बकखा नदी आरहो थी। इसके दहिने किनारे हो लिये। श्वेतभवन की चार दीवारी को पार किया। अब भवन की सीढ़ियां चढ़ते हैं। ऊपर २ चले जा रहे हैं। खच्चर थक जाता है तो उस पर से उतर कर पैदल चलता हूं। थक गया; ज़रासी

देर में ? हाँ, यह हिमालय है। वक्खा नदी के ग्लेशियर पर चढ़ रहे हैं। श्वेत, श्वेत, श्वेत हिम दोनों तरफ ! और आगे बढ़े। गल (बर्फानी पहाड़) यहां फटा हुआ है, उसमें से नदी बह रही है। उसके किनारे २ बर्फ में खच्चर पर चढ़ा हुआ मैं जारहा था। सामने श्वेतभवन का प्रथम द्वार है। आहा ! धन्य मेरे भाग्य !! अपूर्व शोभा, विचित्र चमत्कार !!! नीले, काले, सुरमई, मटियेले पर्वतों पर प्रणयोन्मत्ता हिम नाच रही थी। यह क्यों ? उसके पति भगवान भास्कर आठ महीने के बाद घर आये हैं। इसकी प्रसन्नता का यही कारण है, इसीलिये श्वेतभवन में आजकल आनन्द मंगल है। पति के पद-पंकजों का स्पर्श करके किस आनन्द से यह नेत्रों से मुक्ता-फल गिरा रही है। क्या कहना, विरहिणी हो तो ऐसी हो !

फिर बढ़े। गल के ऊपर ऊपर चले; बर्फ में पाओं धंसते हैं। ऊंटाधुरा घाटी (Pass) के पास पहुंच गये। सामने ऊंटाधुरा है, पीछे की ओर बड़ा ग्लेशियर; दस मिनट ठहर कर इस १७५९० फीट ऊँचे घाटे पर चढ़ना शुरू किया। धीरे धीरे, एक एक कदम चढ़कर खच्चरें थक जाती हैं; भेड़ें दम लेने लगती हैं; बकरियां सिर नीचा किए खड़ी हो जाती हैं। चले; धीरे २ एक कदम, दो कदम, तीन कदम, फिर रुक गये; दम फूलता है; सिर कुछ दर्द करने लगता है; प्यास लग गई है। विजयसिंह जी पानी पीने नहीं देते, कहते हैं पानी यहां का अच्छा नहीं। तिब्बती किशमिश मुंह में डालता हूं। फिर दस कदम बढ़ा, लाठी के सहारे सिर झुकाये खड़ा हूं। चढ़ाई बिलकुल सीधी है। ऐसी विकट चढ़ाई पूज्य हिमालय के श्वेतभवन को क्यों है ? यह भारत माता का रक्षक है। इसने अपने दुर्ग को

ऐसा दृढ़ किया हुआ है कि कोई भारत का शत्रु भारत में प्रवेश न कर सके, और यदि छल पूर्वक प्रवेश कर जाय तो जीता वाहर न जा सके। वाहरे द्वारपाल, तुम धन्य हो !

ऊँटधुरा की चोटी पर पहुंच गये। अपूर्व नैसर्गिक छटा ! श्वेतभवन के पुनीत दर्शन !! भगवान भास्कर के चरणों से लिपटी हुई श्वेताङ्गना बाला पति के पाओं की रज को अपने आंसुओं से धो रही है। वे उसे प्रेम से आलिङ्गन कर अपना अपराध क्षमा करवा रहे हैं, और नीले, पीले, बैंजनी, सुनहले रेशमी वस्त्रों को अपनी प्यारी के अङ्गों पर डाल उसके सौन्दर्य्य को बढ़ा रहे हैं। पति का अविरल प्रेम देखकर पुलकित अङ्गों से वह उनके पाओं चूमती है और हाथ जोड़ यह प्रार्थना करती है—

"इस वार यह दासी आपके पदों का ध्यान करती हुई साथ जायगी; जंगल, मैदान में आपकी सेवा कर आनन्द सुख लाभ करेगी।"

उसकी प्रार्थना स्वीकृत हो गई। हमें भी उसकी प्रसन्नता से बड़ा सुख मिला। ऊँटाधुरा के नीचे उतरे। नीचे उतरने में पौन मील हिम ही हिम पर चलना पड़ा। किसी प्रकार नीचे उतरे; पहला घाटा निकल गया।

दस मिनट ठहर कर फिर दूसरे पहाड़ पर चढ़ना आरम्भ किया। यह १७००० फीट ऊँचा है, इसका नाम जयन्ती है। इस पर की सारी वर्फ पिघल गई थी, इसलिए इसको पार करने में कुछ भी कठिनाई नहीं हुई। उतार में एक बड़ा ग्लेशियर मिला। इर्द गिर्द भी गल ही गल दिखाई देते थे, जिनमें

से नदियां निकल निकल कर न जाने कहां जा रही थीं। जयन्ती भी पार कर लिया।

सब से अन्तिम द्वार श्वेतभवन का कुङ्गरी बिङ्गरी है। इसकी ऊँचाई १८३०० फीट है। सामने, ऊंचे, दूर, गढ़ की तरह कुङ्गरी बिङ्गरी का घाटा दिखाई देता था। कई एक घुमाव फिराव के बाद ग्लेशियर से ऊँचे उठे। मैं खच्चर पर सवार था। विजयसिंह जी भी अपने खच्चर पर सवार थे; उनके नौकर हंसते चले जा रहे थे; उनको किसी प्रकार का कष्ट चढ़ाई में मालूम नहीं होता था। उनके लिए यह साधारण यात्रा थी। यह सब अभ्यास का फल है।

ग्लेशियर से ऊपर उठने के बाद बिलकुल सीधे चढ़ाई पर जाना था। पशु बेचारे भी थक गये। मेरी जेब में जो तिब्वती किसमिस थी वह मैंने अपनी खच्चर को खिला दी। चार बज चुके थे। रवि की किरणें पर्वतों पर पड़ी हुई धुन्ध में से छन कर आ रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो सूर्यदेव के हृदय पट पर वैराग्य का श्वेत आवरण छा गया है और उनका ध्यान अपने परोपकार के उच्चादर्श की ओर फिर खिंचा है, नहीं तो जौलाई के महीने में चार बजे की धूप ऐसी हलकी और उसका प्रकाश ऐसा मध्यम हो नहीं सकता था। अभी हम लोगों को कुङ्गरी की महा भयानक चढ़ाई पर चढ़ना था। मैं तो थक कर चूर होगया; क्योंकि सवारी के साथ खच्चर चढ़ाई नहीं चढ़ सकती थी, इसलिए मुझे पैदल चलना पड़ा। विजय सिंह जी मुझसे बहुत आगे निकल गए, और ऊपर पहाड़ पर खड़े, मुझे चढ़ने के लिए उत्साहयुक्त वचनों से बुला रहे थे। मैं दो कदम चढ़कर बैठ जाता, और फिर ऊपर की ओर

दृष्टि डाल कर उस चोटी की ओर देखता, जहां विजयसिंह जी खड़े थे। "क्या कभी मैं वहां तक पहुंच सकूंगा"—यह निराशासूचक शब्द मेरे मुंह से निकले। तत्काल ही अपने को धिक्कार कर मैंने कहा—

"क्या जो काम यह भोटिए कर सकते हैं उसे मैं नहीं कर सकता? अवश्य कर सकता हूं"।

फौरन उठा। लकड़ी के सहारे धीरे धीरे पैर आगे बढ़ाया, बड़ी कठिनाई से पैर उठते थे; शरीर का सारा बोझ पीछे की ओर गिरा पड़ता था। कुछ परवाह नहीं की। ज़रा सुस्ता लिया और एक पत्थर पर बैठकर तान उड़ाई—

"सारे जहां से अच्छा, हिन्दोस्तां हमारा;
हम बुलबुले हैं उसकी, वह गुलिस्तां हमारा।
पर्वत जो सब से ऊंचा, हमसाया आसमां का;
वह सन्तरी हमारा, वह पासबां हमारा।"

भारत रक्षक हिमालय के गुण गाता हुआ आगे बढ़ा। मेरे आगे जो पशु जा रहे थे, उनमें एक घोड़ा बहुत थक गया था। उसे मार २ कर ऊपर ले जा रहे थे। मैंने बहुतेरा कहा कि इसे कुछ खिलाकर लेजाना चाहिए, लेकिन चूंकि मंज़िल पूरी हुआ ही चाहती थी, इस हेतु किसी ने कुछ परवाह नहीं की। सब ऊपर चढ़ गए, उन्होंने कुक्करी बिक्करी का घाटा तै कर लिया। विजयसिंह जी भी अपने नौकरों के साथ ऊपर पहुंच गए। मैं पीछे रहगया, और मेरे पीछे एक शराबी भोटिया व्यापारी हाँफता हुआ चला आता था। अब केवल सौगज़ चढ़ाई बाकी रह गई। किसी प्रकार दम लेता, चित्त को ढाढ़स देता, टांगों

को पुचकारता, निरुत्साह को फटकारता ऊपर चढ़ ही गया। चढ़ाई ख़तम होगई; तिब्बत सामने है। १८३०० फीट की ऊंचाई पर पहुंच गया; भारत की सीमा का अन्त हुआ; भारतीय द्वारपाल के श्वेतभवन के जोहारवाले तिब्वती दरवाज़े के पास मैं खड़ा था।

आइए पाठक, तिब्बत प्रवेश करने से पहले एक वार जननी जन्मभूमि से प्रेमभरी बातें करलें—पीछे एकवार घूमकर देखलें—हिमाचल के श्वेतभवन पर दृष्टि दौड़ालें। माता से विदा मांगकर, उसकी आज्ञा से, उसका आशीर्वाद लेकर, आगे बढ़ेंगे, तभी आगे की यात्रा भी सफल हो सकेगी।

सिंहावलोकन

१८३०० फीट ऊंचे इस घाटे पर खड़े होकर पीछे की ओर दृष्टि डालिए। क्या देखते हैं? सामने वीस तीस मील के घेरे में प्रकृति के सौन्दर्य्य की अवर्णनीय शोभा दृष्टिगोचर होती है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम किसी ओर नज़र दौड़ाइए, ईश्वर की उत्कृष्ट विभूति का अद्वितीय चित्र दीख पड़ता है। क्या इस पृथ्वी तल पर ऐसा मनोहर, ऐसा उज्वल, ऐसा अप्रतिम, ऐसा रमणीक स्थल कहीं और होगा? क्या विश्वकर्ता से बातें करने के लिये ऐसा एकान्त स्थान कहीं और है? जिन आर्य-वीरों ने हिमाचल की प्रशंसा में सैकड़ों ग्रन्थ बना डाले, वे प्रभु की रचनाशक्ति के रहस्य से अवश्य कुछ न कुछ परिचित थे। हिम से ढकी हुई चोटियां एक दो नहीं—बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर—इस छोटे से भूमि के टुकड़े में हीरे के नगों की मानिन्द जड़ी हैं। प्रभात के भानु की रश्मियां जिस समय इन पर्वतों पर पड़ती हैं, उस समय की अलौ-किक छटा क्या कोई लेखनी से चित्रित कर सकता है? उस निर्दोष चित्रकार के कौशल की लावण्यता को वर्णन करने की शक्ति मनुष्य में कहां, यहां तो—"न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा—" वाली बात है।

उन आर्यों को सचमुच सुन्दरता की परख थी जिन्होंने इन स्थानों पर आकर अपने परम पुनीत मन्दिरों की स्थापना की और अपनी भावी सन्तान को इधर की यात्रा का माहात्म्य बताया। गर्दन तक विषयों की कीच में डूबा हुआ व्यक्ति भी इस भूपृष्ठ पर आकर ईश्वरीय अलौकिक शक्ति का गुणगान किए बिना न रहेगा। प्राचीन ऋषियों ने जो इधर की भूमि

को तपोभूमि कहा है सो सर्वथा सत्य है। कमज़ोर, दुबला पतला मनुष्य इधर आही कैसे सकता है, और यदि आवे भी तो उसको विना परिश्रम किये भोजन कैसे मिलेगा। इसके अतिरिक्त ध्यानावस्थित होकर मन को एकाग्र करने के लिये इधर से अच्छा स्थल और कहां ? सामने नन्दादेवी अपनी सखियों के साथ साभिमान खड़ी प्रभु का गुण गान कर रही है। उसके नीचे की ओर त्रिशूल के दर्शन होते हैं, जिसकी तीनों चोटियां बाइस हज़ार फीट से अधिक ऊँची है। इनके पास ही नन्दकोट २२५३० फीट ऊंचा भारत की जयध्वनि कर रहा है। नन्दादेवी के पूर्व की ओर पंचाचूली अपनी पांच सहेलियों के साथ क्रीड़ा कर रही है। कई और ऊंची २ चोटियां इसके आस पास पूर्व में हैं। नन्दादेवी के पश्चिम में श्रीकेदारनाथ जी, श्रीबद्रीनाथ जी आदि पर्वतों की प्रसिद्ध चोटियां हैं। हज़ारों यात्री प्रत्येक वर्ष इन तीर्थों की यात्रा कर अपने को धन्य मानते हैं। यदि हमारे पूर्वज इन स्थानों को पवित्र न ठहरा जाते तो भारतीय सर्वसाधारण बेचारे प्रकृति के इस रम्यस्थानों को देखने से वञ्चित रह जाते।

सचमुच वह समय भारत के लिये बड़े गौरव का था, जब निष्काम कर्म करने वाले ऋषिलोग इस तपोभूमि में बैठकर मनुष्य जाति के उपकार के उपाय सोचा करते थे; जब मातृभूमि के नाम की रक्षा करने वाले क्षत्री इन जंगलों में आकर स्वच्छन्द घूमते थे; जब शुद्ध बौद्धधर्म के प्रचारक भिक्षु इन कठिन घाटों को पार कर अपने पूज्य गुरु का संदेश सुनाने के लिये इधर तिब्बत में आया करते थे। आहा! वह समय कैसे आनन्द का रहा होगा। कैसे निष्कपट, कैसे निरीह, कैसे सत्यवादी, कैसे साहसी वे भारतीय होंगे जिन्होंने इन

घाटों को केवल अपने कर्तव्य पालनार्थ पार किया था। किसी वाणिज्य लोभ से नहीं, किसी कुटिल नीति की चाल से नहीं, किसी राजनैतिक विजयपताका उड़ाने के लिये नहीं, बल्कि उस निःस्पृहप्रेम के वशीभूत होकर वे आए थे, जो प्रेम प्राणिमात्र को अभय प्रदान करता है। प्यारे आर्यवीरो! यद्यपि आपके उन आदर्श चरित्रों को हुये बहुत काल बीत गया किंतु आज भी हिमालय के श्वेतभवन में आपकी उज्ज्वल कीर्ति की ध्वजायें फहरा रही हैं। समय आने वाला है जब कि भारत संतान उन ध्वजाओं पर लिखे हुये इतिहास से अपना सम्बन्ध स्थिर करेगी और अपने जीवन को स्वाभाविक बना अपने प्राचीन पथ का पुनः अनुसरण करेगी।

वह देखो, प्रबुद्ध भारत दूर से अपने कीर्ति स्तम्भों को देख रहा है। उसकी आंखें इन ध्वजाओं पर लगी हुई हैं। वह देखता है कि संसार की सब ध्वजाओं से उसकी प्राचीन ध्वजा सबसे ऊंची है; वह सबके ऊपर है। तो क्या वह कभी नीचा रहेगा? कभी नहीं। उसने अपने उद्देश्य को देख लिया, उसने अपने निशान को समझ लिया। प्रबुद्ध भारत क्या कहता है—

"मेरा भारत सबसे श्रेष्ठ है; वह मुझे सबसे प्यारा है।"

क्या वह अपने पूज्य भारत को सब प्रकार से ऊँचा किए बिना मानेगा? कदापि नहीं। सैकड़ों वर्ष हुये वह युद्ध में गिर गया था; उसने आंखें बन्द करली थीं। उसने समझ लिया था कि उसका झण्डा गिर गया और वह परास्त हो गया। वह शताब्दियों के बाद आंखे खोलता है, किस लिये? ताकि उस पवित्र झण्डे के फिर एक बार मरते समय दर्शन कर ले। लो! वह क्या देखता है? सामने, उसका पूज्य झण्डा अभी

तक खड़ा लहरा रहा है, और भारत का द्वारपाल अपने दलबल सहित उसकी रक्षा कर रहा है। उसके आनन्द की सीमा नहीं, उसके हर्ष का ठिकाना नहीं; क्यों न हो, सिपाही की हारजीत अपने राष्ट्रीय झण्डे के गिरने या खड़े रहने पर निर्भर है। अपने झण्डे को फहराता देख भारत में जान आ गई है, वह अपनी शक्तियों को समेट रहा है, वह अपने लक्ष्य की ओर टकटकी लगाए देख रहा है।

गगनारोही इस घाटे पर खड़ा होकर मैं प्रबुद्ध भारत की हर्ष ध्वनि सुन रहा था। उसका मधुर आलाप मेरे कान में आरहा था। मैंने सुनकर सप्रेम प्रभु को धन्यवाद दिया। उस सर्वशक्तिमान की अपार दया से ही हमारा झण्डा अब तक फहरा रहा है। ईश्वर की इच्छा है कि यह प्रेम-पताका फिर संसार में लहरावे और भारतीय भिक्षु पुनः अपने धर्म के पवित्र सन्देश को संसार में फैलाकर मनुष्य मात्र में शान्ति की स्थापना करें।

पाठक महोदय, कुङ्गरी बिङ्गरी के इस घाटे से आपको हिमाचल का श्वेतभवन भली प्रकार दिखाई दिया; आपने उसकी सुन्दरता भी देखी, नन्दादेवी और परशुराम जी के दर्शन भी किये। अच्छा, अब तिब्बत में चलने के लिये तैय्यार हो जाइये। चलने से पहिले भारत जननी को श्रद्धापूर्वक नमस्कार कीजिए, "धन्य भारत! धन्य भारत!! धन्य भारत!!!" की हर्ष ध्वनि से माता का आनन्द बढ़ाइये। जननी जन्मभूमि से आज्ञा लेकर अब हम तिब्बत में प्रवेश करते हैं।

——:o:——

तृतीय खण्ड

तिब्बत

रतवर्ष की उत्तरीय सीमा, कश्मीर से लेकर आसाम तक, एक लम्बे देश से घिरी हुई है इसी को तिब्बत कहते हैं। तिब्बत चीन के आधीन है और इसका शासन भार लामाओं के हाथ में है। जैसे हमारे यहां धनिक अथवा राजा लोग मन्दिरों के साथ उसका खर्च चलाने के लये गांव लगा देते हैं मालूम होता है ऐसे ही तिब्बत भी चीन राज्य की ओर से धर्मखाते में दान किया हुआ है। तिब्बत के विषय में संसार का शिक्षित समुदाय बहुत कम जानता है। "तिब्बत" इस शब्द के उच्चारण करते ही ऊंचाई, बौद्धधर्म और लामा, यह तीन संस्कार मन में घूमने लगते हैं। तिब्बत को कहां से जाना होता है? उसका जलवायु कैसा है? किस प्रकार के लोग वहां बसते हैं? शासनप्रणाल कैसी है? देश की भौगोलिक स्थिति क्या है? इन विषयों का कुछ भी ज्ञान हम लोगों को नहीं। तिब्बत कहीं ऊंची जगह पर है, बस यह संस्कार मन में है। बहुत कम शिक्षित भारतीय यह जानते हैं कि हमारे देश के सैकड़ों व्यापारी भिन्न भिन्न रास्तों से प्रत्येक वर्ष तिब्बत जाते हैं। अधिकांश तो यही समझते हैं कि तिब्बत महात्माओं के रहने की जगह है, और वहां सैकड़ों वर्षों के पुराने योगी लोग रहते हैं, वहां कोई कलयुगी पुरुष जा नहीं सकता। इस प्रकार के विचित्र संस्कार इस देश के विषय में हमारे अन्दर फैले हुये हैं।

तिब्बत की उच्च-स्थली (Tableland) संसार में सबसे ऊंची है। इधर हमारा गंगा जी का मैदान समुद्री तल से कुछ ही ऊंचा है। इसके आगे उत्तर में पहाड़ियां छः हजार फीट ऊंची है; इसके आगे बढ़ते बढ़ते १८००० फीट तक हिमालय की दीवार ऊंची होती जाती है, जिसके इर्द गिर्द पांच छः हजार फीट ऊंची गगनारोही बर्फानी चोटियां आकाश को स्पर्श करने की चिन्ता कर रही हैं। इसके आगे धीरे २ नीचा होता जाता है। हिमालय की दीवार से तिब्बत आरम्भ होता है और शनैः शनैः पांच हज़ार फ़ीट नीचे होकर १३००० फीट की ऊंचाई पर आजाता है। यहां से भूमि फिर धीरे २ ऊंची होनी शुरू होती है, और पहुंचते पहुंचते १७००० फीट की ऊंचाई की खबर लेती है। वहां से क्यूनलून पर्वतमाला का आरम्भ होता है, जो २०००० फीट से अधिक ऊंचा है। यहीं तक तिब्बत है इसके आगे चीनी तुरकिस्तान है, जिसकी ऊंचाई २००० फीट है। इसके आगे रूस का साइबीरिया है जो हमारे गंगा जी के मैदान की तरह समुद्री तल से कुछ ही ऊंचा है। इस प्रकार शून्य से आरंभ करके, चीनी तुरकिस्तान से आगे क्यूनलुन की २०००० फीट से अधिक ऊंची पर्वतमाला से लेकर हिमालय की १८००० फीट पर्वतमाला तक तिब्बत का देश है, जिसकी ऊंचाई कहीं भी १३००० फीट से कम नहीं। यह देश सब प्रकार की धातुओं से परिपूर्ण है, सोने की खानें भी बहुत हैं। नमक सुहागा तो 'अति' से भी अधिक है। अनाज कहीं २ जहां घाटी होजाने से कुछ उष्णता मिल जाती है, थोड़ा बहुत हो जाता है। झीलें इस प्रदेश में बहुत हैं, जिनकी प्राकृतिक शोभा अतुलनीय है। बड़ी बड़ी नदियां, जैसे सिन्धु, सतलुज, ब्रह्मपुत्र यहीं से निकल कर भारत में आती है। सरदी इस देश

में बहुत पड़ती है। जौलाई के महीने में मैं ग्यानिमा मंडी में छः छः कम्बल ओढ़कर सोया करता था।

इस विचित्र देश के निवासी हुणिये कहलाते हैं। वे (Nomadic) घुमक्कड़ हैं। रमते रामों की तरह एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते हैं। एक स्थान पर घर नहीं बनाते जहां अपने पशुओं के लिये घास पाते हैं वहीं हज़ारों भेड़, बकरी, याक लेकर चले जाते हैं। याक चंवरगाय का तिब्बती नाम है। चंवर गाय ख़ूब दूध देती है। यह देखने में भद्दी मालूम होती है पर इस देश में यह बड़े काम का पशु है। बड़े बड़े लम्बे बाल इसके शरीरपर होते हैं। ये लोम ही इसके सच्चे मित्र हैं। इसकी पूंछ बड़ी सुन्दर गुच्छेदार होती है; उसी का चंवर बनता है। पशु के मरने पर उसकी पूंछ काट लेते हैं। यहां के प्रत्येक पशु के शरीर पर सुन्दर नरम पशम होती है। घास इधर बहुत अच्छा होता है, पशु उसको खाकर ख़ूब मुटाते हैं।

पश्चिमी तिब्बत में रुदोक नाम की एक मण्डी है। इधर भी व्यापारी लोग गरमिओं में इकट्ठे होते हैं। यह स्थान लद्दाख और कोराकोरम पर्वतमाला की ऊर्ध्व भूमि के निकट है। कराकुरम की सबसे ऊंची चोटी "गाड़विन आसटिन" २८२५० फीट ऊंची है और मौन्ट एवरिष्ट को छोड़कर संसार के सब पर्वतों से ऊंची है। इसके उत्तर में अति शीत निर्जन रेगिस्तान है जिसको चंग कहते हैं। क्यूनलून इसी के उत्तर में है। इस क्यूनलून पर्वतमाला में यद्यपि घाटे तो हैं, पर ऐसे विकट हैं कि मनुष्य का उधर गुज़र नहीं हो सकता। वे घाटे बारह महीने हिम से आच्छादित रहते हैं। इन घाटों से निकल कर यदि कोई आगे बढ़े भी तो रास्ता और भी भयंकर

रूप धारण करता है। नदियों के वाहर जाने के लिये मार्ग नहीं, इसलिये जगह जगह झीलें हैं, और उनका जल नमकीन होता है। सोड़ा, नमक और शोरा स्थान २ पर पाया जाता है; वृक्षों का सर्वथा अभाव है और मनुष्य वहाँ रह नहीं सकता। सोने की खानें वहुत हैं, पर उसको निकाले कौन? प्रकृति ने निज मायावी ढंग से इन खानों को सुरक्षित कर रक्खा है। काशगर से आनेवाले यात्री कराकोरम के १८५५० फीट ऊंचे घाटे को पार करना अच्छा समझते हैं किन्तु क्यूनलून की ओर मुंह नहीं करते। मध्य एशिया के व्यापारी, लीह के रास्ते, लासा जाते हैं; या गरतोक के रास्ते कैलाश और मानसरोवर होकर तिब्बत की राजधानी में पहुंचते हैं। गरतोक से रुदोक जाने में आठ दस पड़ाव पड़ते हैं, रुदोक की तरफ से अच्छे २ घोड़े गरतोक में विकने आते हैं, और नमक भी उधर वहुत होता है; आवादी भी अधिक है। रुदोक के आस पास जौ की खेती होती है।

पूर्वी तिब्बत के विषय में हम लोग बहुत कम जानते हैं। पश्चिमी तिब्बत, जहां मैं गया था, के विषय में कुछ पुस्तकें अंग्रेज़ी में निकली हैं, और तिब्बत के इसी भाग के साथ हमारा अधिक सम्बन्ध भी है। श्रीकैलाश और मानस-रोवर पश्चिमी तिब्बत में ही हैं। हमारे अधिक व्यापारी इधर ही व्यापार करने जाते हैं, इसलिए इसी का कुछ व्योरा लिखने की आवश्यकता भी है। इधर गरतोक में राज्य कर्मचारी गरमियों में आकर रहते हैं। यहां सेप्टेम्बर में जब मण्डी होती है तो भोटिए, लद्दाखी, कश्मीरी, तातारी, यारकन्दी, लासा के रहनेवाले तथा चीनी व्यापारी भी आते हैं। गरतोक में वड़ी शीत पड़ती है; सरदियों में वहां कोई भला-

मानस रह नहीं जाता; डाकुओं का बड़ा भय रहता है। वे भयानक रूप बनाए हुये यात्रिओं और व्यापारिओं की ताक में घूमा करते हैं। उन्हीं के डर के मारे जोहारी लोग इकट्ठे बंदूक आदि शस्त्र लेकर चलते हैं। इन डाकुओं के पास बाबाआदम के समय के पुराने हथियार रहते हैं। वे उन्हीं को बड़ा हथियार समझ कर, उन्हीं से यात्रियों को धमका कर, सब कुछ रखवा लेते हैं। भोटिआ लोग बेचारे किसी न किसी प्रकार अपना प्रबन्ध करते हैं; किसी किसी के पास लाइसेन्स भी है।

तिव्वत का शासन-भार लामाओं के हाथ में है। सब से बड़ा लामा ताशीलामा कहलाता है पर ताशीलामा को इतना अधिकार नहीं। देश का सारा शासन दलाई लामा के हाथ में है। वही तिव्वत का सर्वस्व है—जिसको चाहे मारे, जिस को चाहे रखे। दलाई लामा ही तिव्वत निवासिओं का ईश्वर स्वरूप है और वे अपनी प्रार्थना में—"ओम माने पद में हूं"—कहकर उसकी पूजा करते हैं, क्योंकि उनकी समझ के अनुसार दलाई लामा बुद्धदेव का अवतार है और वह जीवन-मरण के दुखों से छुड़ा सकता है। तिव्वत में यह मंत्र स्थान स्थान पर दीवारों और पत्थरों में खुदा हुआ है, छोटे बड़े सभी इसका दिन रात जाप करते हैं; भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दों से इसको रटते हैं और यही समझते हैं कि यह मंत्र सब व्याधिओं का इलाज कर देगा।

दलाईलामा के अधीन बहुत से कर्मचारी शासनकार्य्य में उसकी सहायता करते हैं। उनको गरफन, जौंगपन और तरज़ुम कहते हैं। किसी समूचे प्रान्त का वाइसराय गरफन कहलाता है और ज़िलों के [illegible] जौंगपन और तरज़ुम

रूप धारण करता है। नदियों के बाहर जाने के लिये मार्ग नहीं, इसलिये जगह जगह झीलें हैं, और उनका जल नमकीन होता है। सोड़ा, नमक और शोरा स्थान २ पर पाया जाता है; वृक्षों का सर्वथा अभाव है और मनुष्य वहाँ रह नहीं सकता। सोने की खानें बहुत हैं, पर उसको निकाले कौन? प्रकृति ने निज मायावी ढंग से इन खानों को सुरक्षित कर रक्खा है। काशगर से आनेवाले यात्री कराकोरम के १८५५० फीट ऊंचे घाटे को पार करना अच्छा समझते हैं किन्तु क्यूनलून की ओर मुंह नहीं करते। मध्य एशिया के व्यापारी, लीह के रास्ते, लासा जाते हैं; या गरतोक के रास्ते कैलाश और मानसरोवर होकर तिब्बत की राजधानी में पहुंचते हैं। गरतोक से रुदोक जाने में आठ दस पड़ाव पड़ते हैं, रुदोक की तरफ से अच्छे २ घोड़े गरतोक में विकने आते हैं, और नमक भी उधर बहुत होता है; आबादी भी अधिक है। रुदोक के आस पास जौ की खेती होती है।

पूर्वी तिब्बत के विषय में हम लोग बहुत कम जानते हैं। पश्चिमी तिब्बत, जहां मैं गया था, के विषय में कुछ पुस्तकें अंग्रेज़ी में निकली हैं, और तिब्बत के इसी भाग के साथ हमारा अधिक सम्बन्ध भी है। श्रीकैलाश और मानस-रोवर पश्चिमी तिब्बत में ही हैं। हमारे अधिक व्यापारी इधर ही व्यापार करने जाते हैं, इसलिए इसी का कुछ ब्योरा लिखने की आवश्यकता भी है। इधर गरतोक में राज्य कर्मचारी गरमियों में आकर रहते हैं। यहां सेप्टेम्बर में जब मण्डी होती है तो भोटिए, लद्दाख़ी, कश्मीरी, तातारी, यारकन्दी, लासा के रहनेवाले तथा चीनी व्यापारी भी आते हैं। गरतोक में बड़ी शीत पड़ती है; सरदियों में वहां कोई मनुष्य

मानस रह नहीं जाता; डाकुओं का बड़ा भय रहता है। वे भयानक रूप बनाए हुये यात्रिओं और व्यापारिओं की ताक में घूमा करते हैं। उन्हीं के डर के मारे जोहारी लोग इकट्ठे बंदूक आदि शस्त्र लेकर चलते हैं। इन डाकुओं के पास बाबाआदम के समय के पुराने हथियार रहते हैं। वे उन्हीं को बड़ा हथियार समझ कर, उन्हीं से यात्रियों को धमका कर, सब कुछ रखवा लेते हैं। भोटिआ लोग बेचारे किसी न किसी प्रकार अपना प्रबन्ध करते हैं; किसी किसी के पास लाइसेन्स भी है।

तिब्बत का शासन-भार लामाओं के हाथ में है। सब से बड़ा लामा ताशीलामा कहलाता है पर ताशीलामा को इतना अधिकार नहीं। देश का सारा शासन दलाई लामा के हाथ में है। वही तिब्बत का सर्वस्व है—जिसको चाहे मारे, जिस को चाहे रखे। दलाई लामा ही तिब्बत निवासिओं का ईश्वर स्वरूप है और वे अपनी प्रार्थना में—"ओम माने पद में हूं"—कहकर उसकी पूजा करते हैं, क्योंकि उनकी समझ के अनुसार दलाई लामा बुद्धदेव का अवतार है और वह जीवन-मरण के दुखों से छुड़ा सकता है। तिब्बत में यह मंत्र स्थान स्थान पर दीवारों और पत्थरों में खुदा हुआ है, छोटे बड़े सभी इसका दिन रात जाप करते हैं; भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दों से इसको रटते हैं और यही समझते हैं कि यह मंत्र सब व्याधिओं का इलाज कर देगा।

दलाईलामा के अधीन बहुत से कर्मचारी शासनकार्य्य में उसकी सहायता करते हैं। उनको गरफन, जोंगपन और तरज़ुम कहते हैं। किसी समूचे प्रान्त का वाइसराय गरफन कहलाता है और ज़िलों के हाकिम जोंगपन और तरज़ुम

पुकारे जाते हैं। इनको अपने ज़िले का प्रबन्ध करना, लम्बी लम्बी सज़ायें देना; अपराधी के अङ्ग कटवा डालना आदि शक्तियां प्राप्त हैं। लासा का प्रधान लामा इन कर्मचारिओं की नियुक्ति करता हैं। सब से बड़ा हाकिम गरफन, उससे नीचे जोंगपन और उससे छोटा कर्मचारी तरजुम है। तरजुम अपने अधिकारों में जोंगपन से कम नहीं होता। ये अधिकारी दलाईलामा की स्वीकृति से, तथा अपने पदों को खरीद कर नियुक्त होते हैं। प्रत्येक तीसरे या पांचवें वर्ष से इन राज्यपदों की लासा में नीलामी होती है, जो सबसे अधिक रुपया देता है वही उन पदों का अधिकारी है। फिर वह अधिकारी अपनी प्रजा पर मनमाना टेक्स और दण्ड लगा सकता है।

पश्चिमी तिब्बत का वाइसराय गरतोक में रहता है। साल के साल यहां बड़ा भारी मेला लगता है और बड़ी मन्डी भरती है। दूर दूर से व्यापारी यहां आते हैं। यह मेला सेपटम्बर भर रहता है। लाखों रुपये का व्यापार यहां होता है। इर्द गिर्द के सब कर्मचारी—जोंगपन और तरजुम—यहां आते हैं। जाड़ों में यहां अधिक शीत होने के कारण गरफन गरगुंसा चला जाता है। यह सिन्धु नदी के तट पर है।

गरतोक के दक्षिण पश्चिम में तोलिङ्ग नामी विशाल मठ है। यहां का लामा धार्मिक गुरु होने के कारण गरफन जैसेही अधिकार रखता है वल्कि कई अंशों में उससे ऊंचा है। जब कभी वह गरतोक जाता है तो वाइसराय महोदय को उसका स्वागत करना पड़ता है। तोलिङ्ग मठवाला लामा दलाई लामा को ही अपना हाकिम समझता है; इसलिए कभी कभी दोनों उच्च अधिकारियों की आपस में चखचख हो जाती है।

भारतवर्ष से पश्चिमी तिब्बत में प्रवेश करने के कई एक मार्ग हैं। उनके द्वारा जो आमदनी होती है उसे जौंगपन अधिकारी बांट लेते हैं। जो व्यापारी टिहरी अथवा गढ़वाल के लीलांग और माना घाटों से हो कर तिब्बत जाते हैं वे चपरंग के जौंगपन को कर देते हैं; ऊंटा-धुरा और नेती के घाटों का शुल्क दावा के जौंगपन को मिलता है; लीमूलेख और नैपाली घाटों की आमदनी तकलाकोट के जौंगपन को जाती है। इस प्रकार प्रत्येक घाटे का कर इन कर्मचारियों में बटा हुआ है। लामा की गवर्नमेंट को ये लोग ठेके के तौर पर रुपया देते हैं जो नियुक्ति होने से पहले निश्चित हो जाता है। गरतोक की मंडी में भारतीय व्यापारी कम जाते है। एक तो उनको जिकपा डाकुओं का डर रहता है, दूसरे उधर का मार्ग बहुत कठिन है और शीत अधिक होने के कारण उनके पशुओं को बड़ा कष्ट होता है। जौंगपन कर लेने में तो बड़े मुस्तैद हैं पर डाकुओं को सज़ा देने अथवा रास्ता ठीक करवाने में बड़े सुस्त हैं। प्रजा के आराम का उनको कुछ भी ध्यान नहीं। भारत की कुल तिजारत पश्चिमी तिब्वत के साथ चौदह लाख रुपए साल की है।

तरज़ुम कर्मचारी का मुख्य काम डाक का प्रवन्ध करना है। गरतोक के गरफ़न और लासा की गवर्नमेंट के बीच जो पत्र-व्यवहार राज्य प्रवन्ध के विषय में होता है उसको ठीक ठाक रखने का भार तरज़ुम पर है। गरतोक से लासा ८०० मील पर है। एक एक दिन के पडाव पर घोड़े बदले जाते हैं। और डाक दूसरे पड़ाव पर पहुंचाई जाती है। यदि चिठ्ठी अत्यावश्यक हो तो डाकिए को घोड़े की पीठ पर बांध दिया जाता है ताकि रास्ते में वह कहीं आराम न कर सके। इन

तरजुमों के अधिकार में भी देश का कुछ भाग ऐसा रहता है जिस पर वे निरंकुशता से हुकूमत करते हैं। बरखा के तरजुम के अधिकार में राक्षसताल और मानसरोवर के इरद गिरद भारतीय सीमा तक की भूमि है। इसका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे।

चौदहवां पड़ाव

तिब्बत में प्रवेश

१४ जौलाई बुधवार—संध्या होगई। कुंगरी विंगरी के उस घाटे पर मैं अकेला खड़ा था। आप पूछेंगे, अकेला कैसे? हां अकेला। मेरे सब साथी आगे चले गये थे; वह शरावी भी आगे बढ़ गया, मुझे मातृभूमि से आज्ञा लेने में देर लग गई। सब ख़च्चर चले गये; नौकर आगे बढ़ गये। वह ग़रीव घोड़ा जिसको मार मार कर ऊपर लाए थे; वहीं कहीं छोड़ दिया गया आप कहेंगे इतनी निर्दयता? निर्दयता नहीं, वह घोड़ा आगे चल नहीं सकता था वेचारा वहीं कहीं गिर गया, उसपर कम्वल डाल उसके स्वामी उसे वहीं छोड़ कर चले गए। ठहरे क्यों नहीं? ठहरना कैसा, वहां ठहरना तो मानों मृत्यु के मुख में जाना था। जब मैं कहता हूं मुझे वहाँ खड़े खड़े शाम हो गई, उसके अर्थ यह हैं कि मृत्यु के आगमन का समय आगया। शीत! हे परमेश्वर!! मेरे दांत बजने लगे। दिन को सूर्यदेव की कृपा से ज़ियादा शीत मालूम नहीं हुआ। जब तक वे रहे, श्वेतभवन में खूब आमोद प्रमोद रहा; उछल कूद मची; राग रंग रहे, अब भास्कर भानु चले गये, इस कारण श्वेतभवन में सन्नाटा

है। सन्नाटा ! हां सन्नाटा (Death like Silence) मृत्युवत् सन्नाटा !! वह कभी भूलेगा ? कभी नहीं।

हां, मैं वहां खड़ा था। अकेला ? बिलकुल अकेला ! इधर बर्फ़, उधर बर्फ़; सामने बर्फ़ पीछे बर्फ़; चारों ओर बर्फ़ ही बर्फ़ दिखाई देती है। जो हिम दिन के समय बड़ी नरम, लचलचाती, मन्द मुसकान करती थी, इस समय उसने कठोर रूप धारण करने की ठानी है। इसका कलेजा पत्थर सा हुआ जाता है; दया मया सब भाग रही है। बर्फ़ पर से पांव फिसलता है, हिम मुझसे आलिंगन करना चाहती है। मैं बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ उससे क्षमा मांगता हूं। बड़ी कठिनाई से छोड़ती है। चला, मैं चला; ज़ोर से पांव उठाता हूं। सामने अन्धकार है; मेरा खच्चर भी दिखाई नहीं देता। जीः ! जाड़ा !! मेरे ईश्वर ऐसा जाड़ा !!! मोटा ओवरकोट पहनने पर भी कैसा जाड़ा लगता है। उतार आगया, तेज़ जा रहा हूं; तेज़, तेज़, तेज़; साथियों को आवाज़ देता हूं। उनकी आवाज़ नीचे दूर इस सन्नाटे में आ रही है; वे मुझे बुलाते हैं। तेज़ चला। सामने घाटी है, उसके आगे पहाड़ी; दहिने हाथ ऊंचा पर्वत है, पीछे कुंगरी बिंगरी। नीचे नीचे उतर रहा हूं। मेरे साथी कुछ कुछ दिखाई देने लगे हैं; वे मुझे बुलाते हैं; मेरा खच्चर लिए खड़े हैं। उनके पास पहुंच गया। धन्य प्रभु ! धन्य !! धन्य !!! मौत से बच गया।

यहां आने पर मालूम हुआ कि विजयसिंह जी अभी नहीं आए। हम लोग चल पड़े। थोड़ी दूर ही गये थे कि पीछे विजयसिंह जी की आवाज़ आई। वे आगये। मालूम हुआ कि वे उस घोड़े को किसी गढ़े में ले गये थे ताकि रात को वह

सरदी से बच सके। उसपर कपड़े डाल, वहीं कहीं गढ़ में छोड़ आए थे। उसके बचने की कोई आशा न थी।

विजयसिंह जी तेज़ी से आगे निकल गये, मैं दो साथियों के साथ पीछे धीरे धीरे आता था। बिलकुल अंधेरा होगया। किसी जीवजन्तु की आवाज़ सुनाई न देती थी, केवल हमारे चलने का शब्द और किसी छोटे पहाड़ी नाले की धीमी धीमी "गरगर" कान में आती थी। इस प्रकार चलते चलाते पांच छः मील जाने पर सामने आग दिखाई दी। उसी की ओर चले। पहाड़ियों के घुमाव फिराव के चक्कर काटकर चिरचिन पहुंचे, यहां हमारा डेरा था; सब पशु मनुष्य पहुंच गये थे; आग जल रही थी; और भी व्यापारियों के डेरे यहां थे। मैं अपनी छौलदारी में घुस गया। मेरा विस्तरा लगा हुआ था। विजयसिंह जी बेचारे तो सरदी के मारे परेशान थे। उन्होंने चाय बनवा कर पी; मैंने कुछ सूखे फल खाये। नौकर बेचारे थके हारे थे, इस लिए उनको कष्ट देना उचित नहीं समझा। उन्होंने आशा दिलाई कि सवेरे पेट भर भोजन करावेंगे। रात को सरदी! गज़ब का शीत था। सब कपड़े ओढ़े हुये, चार पांच कम्बल डालने पर भी बदन गरम नहीं होता था। ख़ैर किसी प्रकार रात काटी।

१५ जौलाई बृहस्पतिवार—सवेरे धूप चढ़ने पर उठे। विजयसिंह जी से बातें करते करते मालूम हुआ कि दो आदमी अपनी मूर्खता से कुंगरी बिंगरी के नीचे सरदी में अकड़ कर मर गए। हम लोगों पर ईश्वर की बड़ी दया रही। यदि कहीं रास्ते में ठहर जाते, या बर्फ़ गिरने लगता तो न जाने क्या हो जाता। परमात्मा को धन्यवाद दिया।

धूप निकलने पर मैं पाल से बाहर निकला। लोटा लेकर शौचादि से निवृत्त होने के लिये चला। इर्द गिर्द दृष्टि दौड़ाने पर पता लगा कि हम लोग एक बर्फानी पहाड़ के पास ही पड़े हैं। वह ग्लेशियर हमारे बिलकुल निकट था। मैं पास की नदी में स्नान करने के लिये गया। जल बड़ा ठण्डा यख था। उसके किनारे बैठकर मैंने अपने सब कपड़े धोए; बिल्कुल नंगा होकर नदी में स्नान किया। वहां कोई मुझे देखने वाला न था। मैं था, मेरे सामने सूर्य भगवान, इर्द गिर्द पहाड़ियां—बस खूब स्नान किया। धूप कैसी सुखदा प्रतीत होती थी। वाह ! वाह !! क्या आनन्द है। आकाश भी निर्मल था।

स्नानादि से निपट कर मैंने भोजन किया। रोटी, शाक, गरमागरम—क्या ही स्वादिष्ट था। भोजनोपरान्त सब चल पड़े। ग्यारह बजे होंगे। इसी नदी के किनारे किनारे बातें करते हुये जा रहे थे। यात्रा का जो डर था वह निकल गया, हिमालय पार कर लिया, अब तिब्बत के ऊंचे नीचे मैदानों का सफर कुछ भी कठिन नहीं था। धूप का आनन्द लेते हुये उस नदी के किनारे जा रहे थे। नदी में जल बहुत कम था, शायद वर्षा में चढ़ती होगी।

चिरचिन से चार मील पर तुकपु है, वहीं पहुंचे। तुकपु छोटी मण्डी है। यहां तिब्बतिओं के कई खेमें गड़े थे। वे अपनी भेड़ों को गिनगिनकर इधर उधर कर रहे थे; साथ साथ गाते भी जाते थे। अच्छी सी जगह देखकर हम लोगों ने भी डेरा डंडा डाल दिया। आज यहीं रहने का विचार था। इसलिए सब खच्चर खोल दिये गये, और उनको चरने के लिये छोड़ दिया। दो पाल खड़े कर उनके इर्द गिर्द माल की

गठरियां चिन दी गईं ताकि हवा अन्दर न घुसने पावे। एक पाल मेरे और विजयसिंह जी के लिये था और दूसरे में खाना बनता था; उसी में नौकर भी रात को सोते थे।

विजयसिंहजी चूंकि प्रसिद्ध व्यापारी थे इसलिए बहुत से हुणिये अपनी चोन्दियां फटकारते हुए इनसे मिलने के लिए आए। जो कोई मिलने आता उससे विजयसिंहजी तिब्बती भाषा में—

"खमजम ! भो खमजम !!"

कह कर स्वागत करते। जैसे हम लोग परस्पर मिलने पर कुशल मंगल पूछते हैं इसी तरह तिब्बती लोग "खमजम" कह कर अपना वही आशय पूरा करते हैं। पाल में हुणियों की भीड़ लग गई। मैं मृगचर्म बिछाकर बैठा हुआ था। मेरे विषय में पूछताछ करने पर जब विजयसिंह जी ने उनसे कहा—

"काशी लामा ! काशी लामा" !!

तो सब बड़ी श्रद्धा से मेरी बातें सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। प्रेमी खड्गराय भी आगये थे, उन्होंने दुभाषिये का काम किया। खूब धर्म सम्बन्धी बातें हुईं। ये लोग बड़े श्रद्धालु होते हैं; भूत, प्रेत, जादू टोना आदि सब मानते हैं, अपने दलाई लामा को बड़ा शक्तिशाली समझते हैं। शिक्षा का इनमें बिल्कुल अभाव है। प्रायः सब हथियार बांधते हैं, पर वही पुराने भद्दे शस्त्र। नये नये आविष्कारों के विषय में ये लोग कुछ नहीं जानते, संसार की सभ्य जातियों का बहुत कम हाल इन्हें मालूम है। जब से जापान ने रूस को पछाड़ा है तब से कुछ कुछ योरुपीन सभ्यता की चर्चा इनमें होने लगी है। चीन की दशा भली प्रकार सुधरने के बाद इधर भी जागृति होने की पूरी आशा है।

एशिया के जगने के कुछ कुछ चिन्ह तब इधर भी दिखाई देने लगेंगे, अभी तो पूर्व के केवल झोंके लग रहे हैं।

हुणिए व्यापारी प्रायः भेड़ों की खालों के बक्खू पहनते हैं-बाल अन्दर की ओर और चमड़ा बाहर की तरफ, इस प्रकार के लम्बे कोट का फैशन है। धूप में उस वक्खू से एक बांह बाहर निकाल शरीर का ऊपर का भाग नंगा कर घूमते रहते हैं। इनके बदन से दुर्गन्ध आती है। एक हुणिआ मेरे सामने बैठा हुआ था। बैठे बैठे उसने ज़मीन पर थूक दिया। मैंने दुभाषिये से कहा कि इसको समझा दो कि यहां न थूके। दुभाषिये के समझाने पर उसने उस थूक को मिट्टी सहित उठा कर अपने वक्खू पर डाल लिया। उसकी बुद्धि के अनुसार यही सभ्य शिष्टाचार था। मैं उसे क्या कहता, उस बेचारे को जो ठीक जंचा वही उसने कर दिखाया।

दिन भर हवा चलती रही। इधर बड़े ज़ोर से हवा चलती है [illegible] जी तो अपने व्यापारियों से मिलने मिलाने में लगे रहे। ये हुणए ग्यानिमा मण्डी न जाकर इधर ही चले आये थे। इनको पता लगा था कि भारत में इस वर्ष अनाज की कमी है, संभव है अनाज मिले न मिले, इसलिये ये लोग भोटिये व्यापारियों को रास्ते में ही मिलने आये थे ताकि ठीक ठाक करके पहले ही अनाज़ ख़रीद लें। ग्यानिमा पहुंचने पर शायद अनाज़ बिक बिका जाए, इस कारण बेचारे घबराये हुए रास्ते में डेरा किये पड़े थे। तिब्बत में इस वर्ष मौसम अच्छा था। भेड़ों की ऊन खूब हुई थी। कई भोटिए व्यापारियों ने अपना माल यहीं पर बेच वारे न्यारे कर लिए, और यहीं से नमक सुहागा बदले में लेकर वापिस घर जाने की ठानी। कई

साहूकारों ने माल खरीद कर, अपनी भेड़ों, झब्बुओं पर लदवा, नौकरों के साथ भारत भेज दिया, और नौकरों को जल्द लौट आने की ताकीद कर दी। इस प्रकार बहुत से व्यापारियों का सौदा रास्ते में ही हो गया; यहीं तुकपु में ही उन्होंने अपनी भेड़ें झब्बू लाद लिये।

दो साधारण ऊंची पहाड़ियों के बीच में तुकपु नाम की यह मण्डी है। तुकपु नदी के किनारे होने से इसकी यह संज्ञा हो गई है। यहां कोई पक्का मकान मैंने नहीं देखा। हुणिओं के खेमे छौलदारियां लगी थीं, बस इन्हीं के कारण यह बस्ती बन गई थी। जहां चौरस भूमि, जल निकट और घास का सुभीता हो वहीं छोटे छोटे पाल खड़े करने से तिब्बतिओं का ग्राम बस जाता है। जब ज़रा ऋतु प्रतिकूल होने लगी, तब ये अपने पाल उखाड़ कर पशुओं पर लाद लेते हैं और किसी दूसरे स्थान की ओर चल देते हैं। इसी प्रकार की यह तुकपु मण्डी समझ लीजिये। इर्द गिर्द पहाड़ियों पर घास बहुत थी। पशुओं को इन दिनों तिब्बत में बड़ा सुख मिलता है; अच्छी सुन्दर घास खाकर वे खूब उछलते कूदते हैं।

संध्या के समय मैं नदी के किनारे गया। जल कम था। नदी चौड़ी है। किनारे के पास जल भूमि में से फूट फूटकर निकल रहा था। तिब्बतिओं को शौच जाते देखा। ये लोग अपने अंग साफ करने के लिये जल का प्रयोग नहीं करते। हम लोग जो गरम देश के निवासी हैं इनकी इस आदत को बड़ा बुरा समझ इनसे घिन करते हैं। स्पष्ट बात यह है कि इनकी इस आदत का कारण यहां का अति शीत है। मनुष्य जैसी जैसी हालतों में रहता है, जिस जिस प्रकार की ऋतुओं का इसे सामना

करना पड़ता है, वैसे ही उसका स्वभाव और रहन सहन हो जाता है। यह बात अवश्य है कि शिक्षा से उसमें बहुत कुछ परिवर्त्तन हो सकता है किन्तु इर्द गिर्द की प्राकृतिक दशाओं का प्रभाव बिलकुल दूर होना असंभव है। इस देश में जहां वर्ष में केवल तीन महीने हिम से छुटकारा मिलता है, लोग जल से कैसे प्रेम कर सकते हैं? इन दिनों जौलाई के महीने में हमारे पूष माघ से कहीं अधिक शीत यहां पर था। एक तो तिब्बत की ऊंचाई कहीं भी १३००० फीट से कम नहीं, दूसरे इसके चारों ओर हिमावृत पर्वतों की चोटियां, फिर भला यहां के निवासी गरम देश वालों की तरह जल को कैसे अपनायें? यह हो नहीं सकता।

रात को कुछ काल तक भजन होते रहे। यहां की स्वतंत्र भूमि में किसी टिकटिकी का 'भय' तो था ही नहीं, मैंने शुद्ध और स्वच्छन्द वायु से अपने फेफड़ों को भली प्रकार भर लिया। रात्रि बड़े सुख से कटी।

पन्द्रहवाँ पड़ाव

गुणवन्ती के किनारे

१६ जौलाई शुक्रवार—सवेरे उठ कर चले। तुकपु नदी पार कर उत्तर पूर्व की तरफ हो लिये। धीरे धीरे धूप सेकते हुये खच्चरों पर जा रहे थे। एक पहाड़ी पर चढ़े, उस पर बर्फ़ पड़ी हुई थी। यहां हमें दो चार बादलों ने घेर लिया। थोड़ी देर में धुनकी हुई रुई की तरह हिम ऊपर से आने लगा। अमरीका छोड़ने के बाद आज फिर इन रुई के गालों का मज़ा लूटा।

घूमते घामते ; पहाड़ियों के मामूली उतार चढ़ाव देखते हुये एक बड़ी घाटी में घुस गये। यहाँ डाकुओं का डर रहता है, इस लिये सावधानी से इधर उधर देखते भालते आगे बढ़े। घास और पौधे यहां बहुत थे। खच्चरें चलती चलती इनमें मुंह मार लेती थीं। नरम नरम घास के दो चार ग्रासों से मुंह भर लिया और दौड़ पड़ीं। रास्ते में कहीं किसी प्रकार की आबादी देखने में नहीं आई। पहाड़ियां, पर्वती नाले, घाटे, सोते देखते हुये दस बजे के करीब ठाजंग पहुंचे। यहां दो चार डेरे थे, बाकी भोटिया व्यापारी आगे चल दिये थे। एक पानी के सोते के पास डेरा डाला। रात भर यहीं रहे; खूब सरदी थी।

१७ जौलाई शनिवार—भोर होते ही यहां से चले। इस घाटी से निकल कर, जब ऊपर पहाड़ी मैदान में आये तो पीछे और दहिने हिमालय की श्वेत चोटियों की कतार क्या भली मालूम होती थी। ऐसा रमणीक भूप्रदेश मैंने पहिले कभी न देखा था। हिमालय की पर्वत माला का ऐसा विचित्र सौन्दर्य्य तिब्बत से ही देखा जा सकता है। मैदान में खड़े होकर सामने दृष्टि दौड़ाइये, दक्षिण की ओर पूर्व से पश्चिम या पश्चिम से पूर्व जिधर आपका मन चले, उधर ही हिमालय की पर्वतमाला दौड़ती हुई बोध होती है। बर्फानी चोटियां बराबर एक के बाद एक सूर्य के प्रकाश में जगमग जगमग कर रही हैं। नैपाल, व्यास, चौन्दास, दारिमा, कुङ्गरीबिङ्गरी, बलच, शेलशेल, नेती, माना के घाटे सब अपनी अपनी ज़गह पर दिखाई देते हैं। यहां किसी बड़े कुशल चित्रकार की आवश्यकता है। ऐसा सुन्दर सुहावना विशाल चित्र हिमाचल का शायद ही कहीं से दीख पड़े। प्यारे पाठक, यदि आप केवल इसी विचित्र चित्र का आनन्द लाभ करने के लिये यहां की यात्रा का कष्ट उठायें,

तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपकी यात्रा सार्थक हो जायगी।

शुद्ध निर्मल जल की नदी पारकर छिनकु पहुंचे। छिनकु ठाजंग से चार मील होगा, यहां बहुत से पाल खड़े थे। हुणियों की भेड़ें भां! भां!! कर रही थीं। नदी के स्वच्छ जल में स्नान करने की ठानी; बड़ा आनन्द आया। आज डण्ड पेल कर व्यायाम भी किया।

मीलम से जो यात्री मुझसे पहले चल पड़े थे, वे यहीं से तीर्थपुरी होकर जानेवाले थे। यहां से तीर्थपुरी को सीधा रास्ता जाता है। यद्यपि मुझे तीर्थपुरी जाना था, लेकिन मेरी इच्छा ग्यानिमा मण्डी की चहल पहल देख, अपनी कैलाश यात्रा का पूरा प्रबन्ध कर, तब उधर जाने की थी ताकि मार्ग में खाने पीने का कष्ट न हो। अब इसके आगे भोटियों से अलग होकर यात्री को कुछ खाने को नहीं मिलता। भोटिये व्यापारी ग्यानिमा तक जाते हैं; जो अधिक उत्साही हैं वे गरतोक भी पहुं-चते हैं; कोई किसी कार्यवश कभी कैलाश जी भी चला जाता है, अतएव भारतीय यात्री को कम से कम पन्द्रह दिन का भोजन अपने साथ बांधना आवश्यक है। श्री कैलाश और मानसरोवर के मार्ग में भोजन छीनने वाले तो बहुत मिल जाते हैं पर देने वाला कहीं दिखाई नहीं देता। कोई दुकान भी नहीं, जहां से कुछ खरीदा जा सके। ऐसी दशा में यात्री इकट्ठे एक दूसरे की सहायता करते हुये चलते हैं, और यही उचित भी है। कुछ पहाड़ी यात्रियों ने सत्तू गुड़ भोटिओं से खरीद लिया था। वे अपनी अपनी गठरी मुठरी बांध दूसरे दिन चलने को तय्यार बैठे थे। कइओं ने भिक्षा मांग कर अपनी रसद इकट्ठी की थी।

यहां छिनकु में उस लम्बे उदासी साधु की दुष्टता का पूरा परिचय मिला। जिन यात्रियों के साथ वह आया था वे सब उसके हाथ से तंग थे। सब ने उसकी शिकायत की। वे उस उदासी को अपने साथ तीर्थपुरी लेजाना नहीं चाहते थे, और वह हुदंङ्गा उन्हीं के साथ जाना चाहता था। मेरे समझाने बुझाने पर वह रुक गया और पहाड़ी यात्री दूसरे दिन आनन्द से अपने मार्ग पर हो लिए।

१८ जौलाई रविवार—आज सवेरे पांच चार मील चल कर एक बड़ी नदी पार की। इस नदी का नाम गुणवन्ती है। यह सतजल की सहायक नदी है। इसी के किनारे रेत में डेरा किया।

सोलहवां पड़ाव

ग्यानिमा की ओर

१९ जौलाई सोमवार—सवेरे चले। बड़े बड़े घास के मैदान देखने में आए। जङ्गली घोड़े हमारे बायें हाथ दूर चर रहे थे। एकबार कुछ फासले पर मैंने तीन चार हुणिए सवारों को आते देखा। मेरे साथी भोटिए सब पीछे थे; विजयसिंह जी भी पीछे आरहे थे। मैं उन हुणिओं को डाकू समझ अपनी खच्चर रोक कर खड़ा होगया, और जब वे सौगज़ पर रह गए तो तेज़ी से अपनी खच्चर को चलाकर—"खमजम ! भो खमजम !" कह कर उनकी ओर दौड़ा ! वे भी 'खमजम' कह कर मेरे पास से निकल गए।

सामने दमयन्ती नदी चमक रही थी। उस के किनारे

पहुंच मैं अपने साथिओं की बाट जोहने लगा। जब सब लोग आगए तो उस पहाड़ी नदी को पार किया। इस में कमर तक जल था। खच्चर इसको आसानी से पार कर गए। आज दिनभर इसके किनारे रहे। शाम को मैं दो घंटे नदी के किनारे बैठकर 'दमयन्ती' नदी के पत्थरों के साथ अकेला खेलता रहा। सामने तेज़ धार बह रही थी। उसको देखकर क्या क्या भाव मेरे हृदय में उठे—

"दमयन्ती! कैसा सच्चा भारतीय नाम है। इस नाम के उच्चारण करने से सती, साध्वी, भारतीय पतिव्रता रमणी 'दमयन्ती' का स्मरण होआता है। पतिप्रेम से विह्वल उस विदर्भ राजकुमारी की मनमोहिनी मूर्ति सामने खड़ी होजाती है। पति विरह से आतुर वह, भारतीयवाला, अपने प्यारे नल को जङ्गल में तलाश करने निकलती हैं; वह देखो, जङ्गल के निर्जन स्थल में कामांध व्याध उसके रूप लावण्य पर मोहित होकर उसको पकड़ना चाहता है; शुद्ध पातिव्रत धर्म की तीक्ष्ण खड्ग से सुसज्जित दमयन्ती अपने प्रभु की ओर निहारती है। आहा! वह दृश्य—पातिव्रत धर्म की विजय और कामातुरता का पतन, सत्य की विजय और अधर्म का नाश—यह उपदेशप्रद शिक्षा इस एक 'दमयन्ती' शब्द में भरी है।"

* * * * *

रात को भजन कीर्तन हुआ। प्रभु के गुणानुवाद गाये; भारतमाता की विजय के लिये प्रार्थना की गई। सुख से रातबीती।

२० जौलाई मङ्गलवार—आज बहुत सवेरे उठे। सामने की पहाड़ी रात को वर्फ पड़जाने के कारण, श्वेतावरण विभूषिता, वन गई थी। आज ग्यानिमा पहुंचने का निश्चय था। यहां से

ग्यानिमा केवल दस मील है। रास्ता सीधा मैदान ही मैदान है। छोटे छोटे झाड़ों से ढके हुए मैदान में से पगडन्डी जा रही थी। दूर तक ऐसा ही मैदान चला गया है। आगे ग्यानिमा के निकट मैदान रुण्ड मुण्ड सा था। यहां घास कम थी; शोरा अधिक है; भूमि सफेद है।

दस बजे ग्यानिमा पहुंच गए। यहां बिलकुल रद्दी, कच्चे मकानों से भी बदतर, हुणिओं के कबूतरखाने बहुत से बने हुए थे। पाठक, बहुत से हमारा अभिप्राय तीस चालीस से है। यहां थोड़ी २ भूमि जुदा जुदा व्यापारिओं के लिए निश्चित है। विजय सिंह जी ने अपने निश्चित स्थान पर पहुंच डेरा डाल दिया। सब सामान उतारा; जगह झाड़ बुहार कर ठीक की। गन्दा! शिव शिव!! इतने मैले ये लोग होते हैं। इनके घरों के आगे कूड़ा कर्कट, भेड़ों के सिर, बकरिओं की हड्डियां, लीद, गोबर, अला बला, सब कुछ पड़ा था। उसी में "खम-जम! खमजम!!" करते हुए हुणिए इधर उधर जा आ रहे थे।

पाठक महोदय, ग्यानिमा में हमें कई दिन रहना है। आइए पहले आपको ग्यानिमा मण्डी का कुछ हालचाल सुनायें ताकि आप अपने मन में इसका चित्र खेंच सकें।

सत्रहवां पड़ाव

ग्यानिमा मंडी

पश्चिमी तिब्बत में, भारतीय व्यापारियों के लिये, ग्यानिमा बड़ी मंडी है। यह हमारी भारतीय सीमा से ३५ मील दूर होगी। इसके उत्तर में तीर्थपुरी और कैलाश की पर्वतमाला, दक्षिण

में भोट का इलाका, पूर्व में मानसरोवर और मान्धता पर्वत, पश्चिम में तोलिङ्ग मठ, दाबा और नेती हैं। यह मण्डी ग्यानिमा के बड़े चौड़े समतल मैदान में स्थित है। ग्यानिमा प्लेटो (अधित्यका) १५००० फीट की ऊंचाई से आरम्भ होकर, धीरे धीरे १४००० फीट ढलवान की ओर सतलुज घाटी के किनारे किनारे पश्चिम की ओर, चली गई है। इस अधित्यका में पत्थर बिलकुल नहीं है; यात्री को चलने में बड़ा सुभीता रहता है; भूमि में से स्थान स्थान पर पानी फूटता है, इस लिये भूमि रात को बड़ी ठण्डी होती हैं; हिमालय की बर्फानी चोटियां भी निकट हैं।

यहां डेढ़ दो महीने तक मण्डी भरती है। दूर दूर से व्यापारी आते हैं। रामपुर बशहरी, लद्दाखी, तुर्किस्तानी, यारकन्दी, चीनी, भूटिए व्यापारी अपना अपना माल पशुओं पर लाद कर लाते हैं। गधे, याक, झब्बू, खच्चर, भेड़, बकरी, घोड़े, जैसी जिसकी हैसियत हो, वैसा ही लद्दू पशु काम में लाया जाता है। दूर दूर के भिन्न भिन्न भाषा भाषी, विचित्र वस्त्र धारण किये हुये, यहां दीख पड़ते हैं। सभी तिब्बती भाषा जानते हैं; इसमें बातचीत कर एक दूसरे के हाथ अपना सौदा बेचते हैं। क़रीब साढ़े चार लाख रुपए का व्यापार इस मण्डी में होता है। साढ़े चार लाख रुपया क्या है? कुछ भी नहीं। जितना कष्ट ये लोग उठाते हैं उसके मुक़ाबिले में साढ़े चार लाख का व्यापार क्या है, परन्तु बात यह है कि व्यापार हो नहीं सकता जहां हानि का भय अधिक और लाभ के साधन कम हों। एक तो विकट घाटों से गुज़रना, दूसरे रास्ते की सरदी, तीसरे अच्छी बनी हुई सड़क नहीं, चौथे नदिओं पर पुल नहीं, पांचवें डाकुओं का भय—कोई कहां तक

हानि सह सकता है—तिस पर भी धन्य है इन लोगों को, जो सब प्रकार के दुख सहकर अपना पेट पालने के लिये इतना उद्योग करते हैं। ग्यानिमा के पश्चिमी मैदान में जहां घाटियां हैं वहां जिकपा डाकुओं का बड़ा डर रहता है। इक्के दुक्के आदमी को वे छोड़ते थोड़े ही हैं। व्यापारी लोग इसी कारण मिलकर चलते हैं, और अपने पास हथियार रखते हैं।

ग्यानिमा मण्डी में पक्के मकान बनाने की आज्ञा नहीं है। कच्ची ईंटें पानी के किनारे से काट काट कर उनकी दीवारें खड़ी करते हैं। उन दीवारों के ऊपर कपड़े, टाट, दरी आदि लगाकर मज़बूत ओलतीनुमा छत्त सी बना लेते हैं। यहां बड़ी तेज़ हवा चलती है, उससे बचने के लिये अपनी गठरिओं की दीवारें अन्दर से बना सब तरह के छेदों की पूर्ति करते हैं। जो व्यापारी लासा से आते हैं उनके तम्बू बड़े शानदार और दृढ़ होते हैं। आज कल जौलाई के आखीर में दोपहर को यहां तम्बू के अन्दर बैठे हुए गरमी मालूम होती थी। सूर्य की किरण बड़ी तेज़ जलाने वाली होती हैं। रात को ऐसी सरदी कि बाहर कोहरा जम जाता है और भूमि सफ़ेद हो जाती है। ज़रा सा पर्वतों पर बर्फ गिरी और बड़ी ठण्डी हवा चली ऋतु का कुछ ठिकाना नहीं। सवेरे जब मैं बाहर नित्य कर्म के लिये जाया करता था तो पानी में हाथ डालने से हाथ सुन्न हो जाता था।

जहां मण्डी लगती है वहां पास ही पहाड़ी के ऊपर किसी प्राचीन किले के खंडहर हैं। कहते हैं यहां किसी राजा का स्वतन्त्र राज्य था और ग्यानिमा का मैदान जल से भरा था। उस भील के होने से दुर्ग बड़ा सुरक्षित समझा जाता था।

इसी मैदान में एक ऊंचा टीला है, जिसके इर्द गिर्द ग्यानिमा मण्डी लगती है। इस टीले पर बहुत से पत्थर एक कुंड में इकट्ठे किये हुये हैं, जिन पर 'ओम माने पद्मे हुं' का मन्त्र खुदा है। ये अक्षर देखने में बंगला लिपि जैसे मालूम होते थे। ग्यानिमा का लामा प्रतिदिन उस टीले पर चढ़कर पवित्र कुंड की पूजा किया करता था। हुणिये रंग बिरंगी झंडियां यहां चढ़ाते हैं और मिन्नत मांगने आते हैं। इसी कुंड में पशुओं के सींग भी पड़े थे, जो किसी श्रद्धालु ने चढ़ाये होंगे।

व्यापारी लोग यहां अपने डेरों में दुकानें लगाते हैं, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर से विलायती और देशी कपड़ा खरीद कर ले जाते हैं। सूखे फल, चीनी, लालटैनें, मूंगे, मोती, मालायें, घोड़ों की ज़ीनें, खिलौने आदि सामान ले जाते हैं। तिब्बती लोगों के सिक्के का नाम टंका है, इसका मूल्य छः आने के बराबर होता है, कभी बढ़ घट भी जाता है। भोटिए लोग इन्हीं टंकों को दाम में ले लेते हैं और जब तिब्बत से चलने लगते हैं तो यही टंके हुणिओं को देकर उनसे उनका माल घोड़े, पश्मीने, चुटके—आदि खरीद लेते हैं। तिब्बत का व्यापार अधिकांश अदले बदले का है। टंके भारत में तो चल नहीं सकते पर अङ्गरेज़ी सिक्का—रुपया, दोअन्नी, चौअन्नी, अठन्नी—तिब्बत में खूब चलती है। इस कारण भोटिओं को सिक्कों में प्रायः कसर खानी पड़ती है, तो भी वे किसी न किसी प्रकार उस कसर को निकाल लेते हैं।

अपने व्यापार को सुरक्षित रखने तथा अपना उधार वसूल करने के लिए भोटिए व्यापारियों को तिब्बती हाकिमों को प्रसन्न रखना पड़ता है। उनको कोई न कोई भेंट प्रत्येक

वर्ष देनी पड़ती है, उनकी हर प्रकार खुशामद करते हैं। जो व्यापारी मिलनसार है, आदमी पहचानकर उधार देता है, हाकिमों को मुट्ठी में रखता है, वह अच्छा लाभ उठाता है। दुकानों पर दिन भर तांता लगा रहता है; डुग्णिए माल देखते फिरते हैं। जो सिर मुंडे हों वे लामा हैं; यही लामाओं की पहिचान है, कम से कम मुझे तो यहां यही देखने में आया। ल्हासा के व्यापारी गोरे और खूबसूरत होते हैं, वे पश्चिमी डुग्णिओं की तरह भद्दे और काले नहीं होते।

प्रायः रोज़ मैं उस टीले पर चढ़कर मान्धाता पर्वत की बर्फानी चोटिओं को देखा करता था; संध्या को मैदान में घूमने जाता था। जहां जहां तिब्बती व्यापारिओं के तम्बू थे, वहां कुत्ते, रुद्ररूप धारण किए, अपने मालिकों के असबाब की रक्षा करते थे। जहां किसी को उन्होंने देखा, झट उस पर लपके। यदि मनुष्य सावधान न हो तो टांग चीर डालना तो उनके लिए साधारण बात है। मैं इनसे बड़ा होशियार रहता था। ये कुत्ते पशुओं की रक्षा करते हैं और उन्हें भेड़िओं से बचाते हैं।

इस साल मण्डी अभी भरी न थी। बहुत थोड़े व्यापारी आए थे; धीरे धीरे उनके आने की आशा लोग कर रहे थे। मेरा चित्त यहां नहीं लगा, ग्यानिमा की गन्दगी के मारे मैं परेशान रहता था; जिधर जाओ उधर ही दुर्गन्ध! डेरों के आस पास कूड़े के ढेर थे। मैंने शीघ्र चलने का निश्चय किया, विजयसिंह जी से सलाह कर चलने की ठानी। खाने की सामग्री इकट्ठी की। सब पांगटी भोटियों ने इस कार्य में हाथ बटाया। उनका मैं बड़ा कृतज्ञ हूं। बेचारों ने जरूरत से अधिक

सामान इकट्ठा कर दिया और उसको कैलाश जी पहुंचाने का ठेका भी ले लिया। सलाह यह ठहरी कि खाने का सामान सीधा ग्यानिमा से कैलाश जी भेजा जाए और मैं अपने दो चार साथियों के साथ पांच दिन के खाने के लायक़ सत्तू लेकर तीर्थपुरी चल दूं और वहां से आगे कैलाश जी चला जाऊं; कैलाश जी पहुंच कर सब सामान मिल ही जायगा। पाठक शायद शंका करें कि सारा सामान साथ ही क्यों न ले गये? बात यह थी कि तीर्थपुरी की ओर दो स्थानों पर डाकुओं का बड़ा भय रहता है, कोई झब्बू वाला हमारे साथ जाने को उद्यत नहीं होता था इसलिये लाचार होकर ऐसा ही करना पड़ा। जाने का निश्चय हो गया, सब ठीक ठाक कर लिया।

ग्यानिमा तक तो मैंने विजयसिंहजी के कम्बलों से गुज़ारा किया था, अब आगे चलने के लिये वे अपने कम्बल दे नहीं सकते थे। केवल एक मोटा काला कम्बल उनसे मंगनी ले लिया और थोड़ा खाने का सामान बांध बूंध दूसरे दिन चलने की ठानी।

अठारहवां पड़ाव

तीर्थपुरी चलते हैं

२५ जौलाई रविवार—सबेरे ही अपने प्रेमी भोटियों से विदा होकर हम लोगों ने तीर्थपुरी की ओर मुंह किया। मील भर दो चार सज्जन पहुंचाने आए। दो रुपये तनख़ाह पर एक पथप्रदर्शक को तीर्थपुरी तक साथ लिया।

आठ बज चुके थे। सामने मैदान ही मैदान दिखाई देता था। इधर की हवा ऐसी साफ है कि दूर की चीज़ स्पष्ट दीख पड़ती है और देखने वाले को उसके निकट होने का भ्रम हो जाता है। जब चलते चलते अधिक समय लग जाता है और निर्दिष्ट वस्तु फिर भी सामने ही दिखाई देती है तब अपनी भूल का ज्ञान होता है।

दो तीन मील चलकर एक झील के किनारे पहुंचे। यह झील ऊंची भूमि पर है। मालूम होता है, इसीका जल ग्यानिमा मंडी के इर्द गिर्द फूटकर निकलता है, या कोई और कारण होगा। यहां कुछ देर सुस्ता लिया। फिर मैदान मैदान चलकर एक नाला पारकर घास वाले मैदान में पहुंचे। यहां बहुत सी चँवर गाये, भेड़े चर रहीं थीं। इनके स्वामी हुणियों का डेरा भी पास ही था। पहले विचार किया यहां ठहर जांय, क्योंकि आगे डाकुओं का भय था, किन्तु बाद में ईश्वर पर भरोसा कर चल पड़े। इस चौरस मैदान को पार कर एक खुश्क पहाड़ी के नीचे पहुंचे। इधर उधर पानी तलाश किया, कहीं नहीं मिला। प्यासे ही पहाड़ी पर चढ़ गये।

इस पहाड़ी को पार कर जब दूसरी ओर पहुंचे तो सामने घाटी दिखाई दी। छोटी छोटी खुश्क पहाड़ियों के बीच यह रेतीली घाटी है। डाकुओं के लूट मार करने योग्य इससे अच्छा स्थान कहां मिलेगा। दृढ़ विश्वास का अमृत पानकर घाटी में घुसे। इसको पार करते करते सूर्य ढल गया। थके हारे प्यासे एक सोते के पास पहुंचे। यहां थोड़ा थोड़ा पानी निकल रहा था। इसी के पास सूखे पहाड़ी नाले में ठहर गये। इधर उधर से उपले इकट्ठे कर लिये। जो पथप्रदर्शक था वह बेचारा लकड़ी

ले आया। रात को सत्तू खाए और सारी रात आग तापकर काटी; मैंने घंटा भर भी नींद नहीं ली।

२६ जौलाई सोमवार—पांच बजे सबेरे चल पड़े। ऊंची ऊंची पहाड़ियों पर चढ़ना पड़ा। बड़ी कठिनाई से पहाड़ी के ऊपर पहुंचे। यहां बहुत से झब्बू लदे हुये आरहे थे। दो तीन जोहारी ब्यापारी साथ थे, इनकी इच्छा ग्यानिमा जाने की थी।

इस पहाड़ी के शिखर से उतार आरम्भ हुआ। एक तंग घाटी में पहुंचे। यह भी किसी पहाड़ी नाले का रास्ता है। वर्षा ऋतु में इसमें कहीं से जल आता होगा, आज कल तो मानो अपने भाग्य को रो रहा था। इस घाटी का रूप बड़ा भयानक है। तंग खुश्क घाटी, इर्द गिर्द दोनों ओर ऊंची पहाड़ियां मानो काट खाने को दौड़ती हैं। कोई पशु पत्ती यहां दिखाई नहीं दिया। दो घंटे में इसे पार कर एक तिमुहानी पर पहुंचे। सामने पानी की गज़ भर चौड़ी धार बह रही थी। यहीं बैठ गये और हाथ मुंह धोकर सत्तू फांकने लगे। घण्टे भर में निश्चिन्त होकर फिर बढ़े। अब चढ़ाई चढ़ना था। १६००० फीट घाटे पर ऊंचे चढ़ गये। यहां से पूर्व की ओर पहाड़ पहाड़ जाना था; सामने सतलुज चमक रहा था। देखने में मानो यह पासही था, पर चलते २ प्यास का कष्ट सहते हुये, पाँच वजे सन्ध्या के करीब नदी के किनारे पहुंचे। सतलुज घाटी में बैठे हैं; सामने सतलुज नदी के पार तीर्थपुरी दिखाई देती थी; श्वेत श्वेत टीले धूप में चमक रहे थे। कुछ सुस्ताकर सतलुज का ठण्डा जल पिया। प्यास मिटाने के बाद नदी पार करने की तय्यारी की। नदी तेज बह रही थी अतएव बड़ी सावधानी से लकड़ी के सहारे सतलुज की तीनों धाराओं को पार किया। तीर्थपुरी पहुंच गए

आज की यात्रा में जल विना बड़ा कष्ट हुआ। सारे रास्ते में केवल दो जगह जल मिला।

उन्नीसवां पड़ाव

तीर्थपुरी

सतलुज नदी के ठीक किनारे तीर्थपुरी का प्रसिद्ध स्थान है। यहां रहने के लिए पहाड़ी टीलों में गुफ़ायें खुदी हैं, कमरे से बने हुए हैं। एक ऐसी ही गुफा में रात बितानी पड़ी। तीर्थपुरी के लामा लोगों ने अपने रहने के लिए इसी प्रकार की गुफायें बनाई हुई हैं। जो यात्री तीर्थपुरी में बुद्ध भगवान के मन्दिर के दर्शन करने आते हैं, उन्हीं को ये सब ठगते हैं। हमारे पीछे भी लग गए थे, बार बार सत्तू मांगते थे। रात किसी प्रकार कट गई।

२७ जौलाई मंगलवार—प्रातःकाल मैं गरम जल के चश्मे देखने गया। एक सफेद पहाड़ी पर कई जगह पानी उबल उबल निकल रहा था। दो एक स्थान पर जल ऐसा उष्ण था कि उसमें हाथ नहीं डाल सकते थे। इन गन्धक के चश्मों में से जो जल उबल उबल कर निकलता है वह पृथ्वी के नीचे नीचे राक्षसताल से आता है। यात्री लोग इस स्थान को "भस्मासुर की ढेरी" कहते हैं। दन्त कथा है कि किसी भस्मासुर नामी राक्षस ने श्री शिव जी महाराज को प्रसन्न करने के लिए उग्र तपस्या की थी। भोले देवता उसके प्रेमपाश में बंध गए और उससे वर मांगने के लिए कहा। भस्मासुर बोला "भगवन्! मुझे ऐसी शक्ति दीजिये कि जिसके सिर पर मैं हाथ रक्खूं, वह उसी समय भस्म होजाए"। महादेव जी ने

कहा "एवमस्तु"। जब भस्मासुर के हाथ में भस्म करने की शक्ति आगई तो उसने दुष्टता वश उसका प्रयोग शिवजी पर ही करना चाहा। महादेव जी भागकर पृथ्वी के नीचे छिप गए। भस्मासुर ने देवी पार्वती जी को घेरा और उनसे अपना प्रेम प्रगट किया। पार्वती जी ने कहा—

"बहुत अच्छा। तुम पहले शिवजी का ताण्डव नृत्य कर के दिखलाओ, बिना उस नृत्य को जाने कोई भी भगवान की वस्तु ग्रहण नहीं कर सकता।"

भस्मासुर उन्मत्त हो नाचने लगा, और उसने ताण्डव नृत्य करते करते अपने हाथों से अपने ही सिर को भूल से छू दिया, बस उसकी दुष्टता का वहीं अन्त हुआ। इसी कारण इस स्थान को भस्मासुर की ढेरी कहते हैं, और यात्रा लोग यहां की सफेद मिट्टी अपने साथ ले जाते हैं और उसको पवित्र मान अपने शरीर पर लगाते हैं।

शतद्रु नदी के किनारे, तीन घाटियों के संगम पर, तीर्थ-पुरी का मन्दिर विराजमान है, इर्द गिर्द सुन्दर सुहावना घास, लहलहाते हरे मैदान, मीलों लम्बे चले गए हैं। पहाड़ी पर खड़े होकर दृष्टि डालने से प्रकृति का विचित्र चित्र दिखाई देता है। चारों ओर हरी हरी दूब पशुओं के चित्त को प्रसन्न करने वाली है। पहाड़ियां खुश्क हैं पर मैदानों में घास बरा-बर चली गई है और मैदान भी बड़े बड़े लम्बे हैं। इन मैदानों के बीच बीच कैलाश पर्वतमाला से निकलने वाले पहाड़ी नाले गड़ गड़ करते हुए जा रहे हैं; और सतलुज की शक्ति बढ़ाते हैं, ऐसे स्वच्छ स्थान पर तीर्थपुरी के चश्मे हैं, किन्तु तिब्बत वासी इस प्राकृतिक सौन्दर्य्य का कुछ लाभ नहीं

उठाते। मरे हुए पशु, कुत्ते आदि सतलुज में ही फेंक देते हैं; नदी के पास ही मलमूत्र त्याग करते हैं, हालांकि इर्द गिर्द बहुत भूमि दिशा फिरागत जाने को है, लेकिन इनको सफाई का तनिक भी ध्यान नहीं।

आज सवेरे तीन घंटे गरम जल से कपड़े धोते रहे। कई दिनों का दरिद्र दूर किया। दोपहर को मन्दिर देखने गए। अंधेरी गुफ़ा में मन्दिर है। मैं तो अच्छी तरह देख भी नहीं सका। घी के छोटे छोटे चिराग़ बुद्ध भगवान की मूर्ति के आगे जल रहे थे। इन मन्दिरों में घी बहुत चढ़ाया जाता है। कई लामाओं के चित्र यहां टंगे थे।

रात को इधर का जंगली साग बनाकर खाया। चश्मे के पासही खुले में सोए। आग सारी रात जलती रही।

बीसवां पड़ाव

कैलाश मार्ग

२८ जौलाई से ३० जौलाई तक—सवेरे बड़ी कठिनाई से कुली का प्रबन्ध कर सके। हमारा पथ प्रदर्शक तो ग्यानिमा लौट गया, उसकी ड्यूटी तीर्थपुरी तक की थी। तीर्थपुरी में एक लामा आया हुआ था, वह हिन्दी भाषा कुछ कुछ बोल सकता था, उसी की सहायता से दो कुली मिले। ये दो कुली तीर्थपुरी के छोटे लामा थे, जो श्री कैलास प्रदक्षिणा के लिए जारहे थे। इन दोनों को असबाब उठाने तथा मार्ग दिखलाने के दो रुपये छः आने दिये।

तीर्थपुरी से कैलाश जी तीन दिन का मार्ग है। इन तीन

दिनों की यात्रा में हमें रास्ते में घास के मैदान, पहाड़ी नदियां, और भेड़ चराने वाले हुणिए मिले। कई नदियां पार करनी पड़ती हैं; बड़ी सावधानी चाहिये। ज़रा कहीं पैर फिसल गया तो नदी अपने साथ ही ले जाती है। मैदानों में घास बहुत है; हजारों भेड़ बकरी आनन्द से चर सकते हैं। हवा बड़ी तेज और ठण्डी चलती है। यात्री को हवा से बचने के लिये गरम कन्टोप का अवश्य प्रबन्ध करना चाहिये। रात को हम लोग खुले में जल के पास डेरा करते थे। अपने सोने लायक भूमि साफ कर पत्थरों की दो फीट ऊंची दीवारें खड़ीकर, फिर पासही आग जला विस्तरे बिछाकर सो रहते थे। क्या करते, किसी प्रकार समय काटना था। तिब्बती लोग ऐसे पत्थरों के घेरों को डोंगे कहते हैं। सारे तिब्बत में इसी प्रकार के डोंगे पांच पांच चार चार मील पर बने रहते हैं। यात्री लोग इन्हीं से मार्ग की पहचान करते हैं। इस देश में न सड़कें हैं, और न पुल ही हैं, सब सफर 'अभ्यास' पर निर्भर है। जो नित्य के घुमक्कड़ हैं वे ही पथ प्रदर्शक का काम दे सकते हैं। तिब्बती पथ-प्रदर्शकों का मुख्य भोजन चाय है। चाय बनाकर सत्तुओं के साथ खाते हैं, जैसे गरम देश में जल पिया जाता है, ऐसेही इधर चाय का व्यवहार होता है। जहां जाकर पहुंचे, लकड़ी उपले इकट्ठे किये, दियासलाई हो तो अच्छा, नहीं तो चकमक पत्थर की रगड़ से आग पैदा कर धुकनी से झट आग सुलगा लेते हैं। इधर की हरी लकड़ी भी खूब जलती है। छोटे छोटे झाड़, आधे भूमि के अन्दर, आधे बाहर होते हैं। इनको उखाड़ कर तत्काल जला लिया जाता है। ईश्वर की माया है।

तीस जौलाई को सवेरे हम श्रीकैलाश के नीचे सिन्धु नदी के किनारे पहुंच गये। यहीं से कैलाश जी को मार्ग जाता है।

सिन्धु नदी कैलाश पर्वतमाला से निकल कर आती है। इसी के किनारे किनारे कैलाशजी की ओर हमको जाना था। सामने पर्वतों के बीच मार्ग फटा हुआ है; सिन्धु नदी ने इस मार्ग को पर्वत फोड़ कर बनाया है। इसी में हम सब घुसे। यहीं से कैलाश परिक्रमा का आरम्भ होता हैं।

विजयसिंहजी ने मेरे खाने पीने का सामान लैन्डी गुनबा (मुख मन्दिर) में भेजा था इसलिये आज इसी मन्दिर में ठहर गये। परिक्रमा के पांच छः मील चलने पर यह मन्दिर मिलता है। यह भी गुफा खोदकर बनाया गया है। नदी की घाटी में पांच सौ फीट ऊंचे टीले पर अच्छा बड़ा मन्दिर है। उसके अन्दर एक कोने में, जहाँ जानवरों की हड्डियां पड़ी हुई थीं, हम लोगों को ठहरने का स्थान मिला। उसी को साफ करके वहीं रोटी बनाई और पेट-पूजा की। ग्यानिमा छोड़ने के बाद आज रोटी और बड़िओं का शाक खाने को मिला। भोजन के बाद मन्दिर देखने गये। यहां अच्छा बड़ा पुस्तकालय है। तिब्बती भाषा के बहुत से ग्रन्थ देखने में आए। उनको कपड़ों में लपेट कर सावधानी से रखते हैं। लामा लोग हर समय 'ओम माने पद मैंहुं' का जाप करते रहते हैं। स्त्रियाँ भी संन्यासियों की तरह इन मठों में रहती हैं, और अपने समय को बुद्ध भगवान की सेवा में खर्च करती हैं।

कैलाश जी की प्रदक्षिणा करने का घेरा २५ मील का है और तीन दिन लगते हैं; कई यात्री दो दिन में ही मार्ग तैकर लेते हैं; तिब्बती लामा तो रात दिन चलकर इसे पूरा कर सकते हैं; जैसी जिसे सहूलियत होती है वैसा ही वह करता है। जो अमीर यात्री हैं, जिनके साथ नौकर तथा खेमें हैं, वे आनन्द

से पांच चार दिन में अपने सुभीते अनुसार यात्रा का मज़ा लूटते हैं। जिनके पास नौकर नहीं हैं वे जहां तक जल्दी हो सकती है करते हैं क्योंकि सामान पीठ पर लाद कर इन पहाड़ों की यात्रा नहीं हो सकती। जिनको अभ्यास है वे कर भी सकते हैं। मैं तो अपनी कहता हूं, मेरे लिये तो पांच सेर बोझ लेकर चलना भी कठिन था। इसी कारण यहां मुख-मन्दिर से दूसरा कुली दरचन तक तलाश किया। अब मेरे पास बोझा अधिक हो गया था। विजयसिंह जी ने जो सामान भेजा था वह और मेरे कपड़े लत्ते इन सब की एक गठरी बना-मुखमन्दिर के लामा के सुपुर्द कर दी। गठरी को अच्छी तरह सीकर, उसपर लाख की मुहरें लगा दीं ताकि लामा के गुरुभाई रात को सामान निकाल कर हज़म न कर जायँ। दरचन चौथा मन्दिर और कैलाश का आखिरी पड़ाव है। परिक्रमा करने वाले दरचन से शुरू करके दरचन ही लौट आते हैं; यही पूरी पच्चीस मील की परिक्रमा है।

इक्कीसवां पड़ाव

कैलाश प्रदक्षिणा

२१ जौलाई शनिवार—सवेरे पांच मील तक सिन्धु के किनारे किनारे चले गये। रास्ते में कई जगह बनैले कबूतरों को कलोलें करते देखा; बड़ा आश्चर्य हुआ। इन बर्फानी पर्वतों में यह भोला भाला पक्षी कहां से आ गया। रास्ते में दोनों ओर जलप्रपात देखे। कैलाशजी की चोटी मेरे दहिने हाथ थी और बायें हाथ दूसरी पहाड़ियां, दोनों ओर से हिम

ढल ढल कर आ रही थी। आगे बढ़े। सामने कैलाश जी के भव्य दर्शन हुए।

क्या ही अलौकिक दृश्य था। यह अनुपम छटा! श्री कैलाशजी का पर्वत सचमुच ईश्वरीय विभूति का अनोखा चमत्कार है। मैंने मन्दिर शिवालय बहुत से देखे हैं पर ऐसा प्राकृतिक शिवालय इस भूमण्डल पर कहीं नहीं है। जिस कुशल शिल्पी ने प्रथम शिवालय की रचना विधि का नकशा तय्यार किया होगा, उसके हृदय पट पर तिब्बत स्थित इस नैसर्गिक शिवालय की प्रतिकृति अवश्य रही होगी, इसके बिना वह कदापि शिवालय बना नहीं सकता था। प्रकृति ने हिम द्वारा वही काट, वही छांट, वही घेरा, वही चिनाई, वही सजावट इस कैलाश पर्वत के निर्माण में खर्च की है। भारत में नक़ली शिवालय देखा करते थे, आज यहां शिवजी का असली स्थान देख लिया। २१८५० फ़ीट ऊंचे इस कैलाशजी की महिमा का वर्णन क्या कोई कर सकता है? किस गौरव के साथ उन्नत मुख किये, यह चारों ओर देख रहा है। इसकी दृष्टि अपने प्यारे भारत पर पड़ रही है, जहां उसकी प्रतिकृति बनाकर करोड़ों आत्मायें "हर हर महादेव!" की ध्वनि कर अपने को धन्य मानती हैं। दूर–चीन, जापान, स्याम, ब्रह्मा, लंका–आदि देशों से बौद्ध धर्मावलम्बी इसकी परिक्रमा करने आते हैं। श्री कैलाश जी का यह विश्वकर्मा चरित मन्दिर उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है जब स्वाधीन भारत के बच्चे, चीन, जापान, के बच्चों के साथ प्रेमालिङ्गन करते हुये, इस की परिक्रमा करेंगे।

जिस कैलाश जी की महिमा पुराणों ने गाई है, जिसकी प्रशंसा में तिब्बती ग्रन्थ भरे पड़े हैं, उस श्री कैलाश के

दर्शन कर आज मैंने अपने आपको धन्य माना। यद्यपि इस पवित्र दर्शन के लिए बड़े बड़े कष्ट सहने पड़े, गन्दे तिब्बतियों के साथ रहना पड़ा, लामाओं की घुड़कियां सुनीं, तो भी क्या, इस आनन्द के सम्मुख वे सब दुख हवा होजाते हैं ! सिन्धु नदी के किनारे जारहे थे पर आंखें कैलाश जी पर थीं। दूसरा मन्दिर आगया। इस को डुरफू कहते हैं। यहां सिन्धु पारकर गौरीकुण्ड की ओर चले। कैलाश जी यहां बिल्कुल सामने, बिल्कुल पास है। चढ़ाई बड़ी कठिन है। धीरे धीरे चढ़ा। रास्ते में वर्षा होने लगी, फिर साफ होगया। ऊंचे, ऊंचे चढ़ते हैं। कैलाश जी के ठीक पीछे, उत्तर की ओर गौरीकुण्ड है। यह बारह महीने जमा रहता है। चार बजे के करीब यहां पहुंचे। कुण्ड क्या है, खासी झील है। आजकल जौलाई में इस पर बर्फ जमी थी। गौरी के किनारे बैठकर सत्तू खाये और बर्फानी जल पिया।

चलने की शीघ्रता की, क्योंकि बर्फ गिरने का भय था। श्रीकैलाश जी को तीन बार नमस्कार किया, फिर 'बन्देमातरम्' का जाप कर 'हरहर महादेव ! ' की ध्वनि से श्री कैलाश जी को प्रसन्न कर चल पड़े।

यहां से नीचे बेढ़ब उतार है। जैसी बेढ़ब चढ़ाई से ऊपर आए थे, वैसेही नीचे साढ़े तीन मील जाना था। एक प्रेमी की सहायता से साढ़े तीन मील बेढ़ब उतार को पूरा किया।

नीचे पहुंचे ही थे कि बादल फिर घिर आया। मूसलाधार वर्षा घंटे भर तक होती रही। एक बड़े ढोंके को आड़ में देर तक बैठे रहे। चारों ओर जलही जल दिखाई देने लगा।

जब वर्षा थम गई तो नदी के किनारे तीसरे मन्दिर की तरफ चले। पाठक अब हम लौटते हैं, सुनिए; उस घाटे के पास से जहाँ पर्वत माला फोड़कर सिन्धु नदी मैदान में आई है, हम लोगों ने परिक्रमा आरंभ की थी। धीरे धीरे नदी के किनारे ऊपर चढ़ते हुए डरफू पहुंचे थे; वहां कैलाश जी की पूर्णकला के दर्शन कर दहिने हाथ गोरी कुण्ड की ओर घूमे, इस घुमाव से गोरी कुण्ड तक विकट, टेढ़ी मेढ़ी चढ़ाई पूरीकर, कुंड का अमृत रूपी जल पान किया। वहां से उतरे। डरफू, से लेकर इस उतार के पूरा होने तक जो मार्ग है उसको आप श्री कैलाश जी की पीठ का रास्ता समझिये। डरफू के पास हमने सिन्धु नदी को छोड़ दिया था, उतार खतम होने पर कैलाश पर्वतमाला से निकलने वाली दूसरी धारा को पकड़ लिया। अब इसके किनारे किनारे चलकर पीछे लौट पड़े।

संध्या हो गई। पानी में "छल! छल!!" करते हुये जारहे थे। जूता टूट गया था, उसको फेंक देना पड़ा। बाईं ओर भयानक पर्वत-माला, दाहिनी ओर कैलाशजी, सामने विकट मार्ग चले जा रहे हैं; साथी सब आगे चले गये, केवल दो जने मेरे साथ थे। एक साथी की ग़लती के कारण रास्ता भूल गये। बिलकुल अंधकार छा गया। अंधेरा! मुझे दिखाई नहीं देता; टटोल टटोल कर पहाड़ी दुर्गम पथ पर जा रहा हूं। बायें हाथ नदी भीषण नाद करती हुई जा रही है, दाहिने हाथ कैलाश जी की पर्वतमाला चली गई है। रास्ता नहीं सूझता। इस घटाटोप अन्धकार में दहिने हाथ के पत्थरों के पास बैठ जाते हैं। जिस साथी की भूल का यह परिणाम था वह बेचारा पछताता है, पर "अब पछताये क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत"—आज इसी विकट घाटी में, बर्फानी पर्वतों के बीच, खुले में रात काटनी

पड़ी, परन्तु एक सहारा उस सर्वशक्तिमान का था जिसने सदा अपने प्रेमिओं की मुसीबत में रक्षा की है।

भीगे हुये पत्थरों पर बैठे हैं; काला कम्बल ओढ़ा हुआ है, छाता लगा रखा है; आकाश मेघों से आच्छन्न है। सामने से नदी की गर्जना की आवाज़ आरही है; इर्द गिर्द काला अन्ध-कार, सामने ऊंचे पर्वत पर बर्फ पड़ी है। बैठा हूं; चुपचाप बैठा हूं; अकड़ा हुआ बैठा हूं; ज़रा इधर उधर नहीं डोलता ताकि कपड़े मिट्टी से लतपत न होजायें, ऊपर से वर्षा होरही है। ऊंघता हूं। यह क्या ? पीछे से पानी आ रहा है। दोनों पैरों को अच्छी तरह ऊपर पत्थरों पर रखता हूं, कपड़े सम्भालता हूं ताकि पानी नीचे नीचे से चला जाए। वर्षा बन्द हो गई, प्रभु का नाम लेता हूं; कुछ ध्यान करता हूं। धीरे धीरे रात बीतती है—एक, दो, तीन, चार, पांच—वह सामने सूर्य भगवान का देदीप्यमान रथ आ रहा है। अन्धेरा भागता है, वह प्रकाश के सामने कैसे ठहरेगा। दिन होगया। आह ! ३१ जौलाई १९१५ शनिवार की रात इस प्रकार कटी। आयु भर यह रात भी याद रहेगी।

बाईसवां पड़ाव

श्री कैलाश जी के चरणों में

१ अगस्त रविवार—सवेरे छुडुलपु मन्दिर में पहुंच गये* यहां मन्दिर के आगे बहुत सी झन्डियां लटकाई हुई थीं। मन्दिर वैसा ही गुफा की तरह है; दरवाज़े, और छतें भी होती हैं;

*यहां से कुछ साथी कहीं चल दिये—लेखक

दो तीन मंज़िले मकान बनाते हैं। यहां दो रुपए देकर ने मैंटाट का जूता खरीदा। जूता क्या था खाली मोटे टाट का तला ही तला था। उसी में रस्सी डाल पैर के इर्द गिर्द जकड़ लेते हैं, उसी भद्दे तले को पहिर कर आगे बढ़ा। नदी के किनारे किनारे चलकर चार घंटे में घाटी से बाहर निकले; मैदान में पहुंचे; सामने है दरचन। पूरी परिक्रमा हो गई।

दरचन कैलाशजी के उपत्यका में छोटा सा ग्राम है; यह भी नदी के किनारे बसा है। यहां एक दुकानदार के आंगन में ठहरने का प्रवन्ध किया। जब बोरा खोलकर अपने रसद सामान ठीक करने लगे तो दरचन मन्दिर के मेनेजर को पता लगा। वह हमें अपने साथ ले गया हमने उसके यहां ठहरने का प्रवन्ध कर लिया। तिब्बती लोग हमारे असवाव—आटा दाल चावल-आदि को किसी धोके से ठगना चाहते थे; सभी की लालसा थी कि इनसे कुछ न कुछ ठग लें। जिस प्रकार हमारे तीर्थों पर पण्डे गिद्धों की तरह यात्रियों पर झपटते हैं ऐसे ही यहां भी देखने में आया।

दारिमा के तीन व्यापारियों की सहायता से मैंने झव्बू किराए पर किया। यहां का दुकानदार हुणिया तकलाकोट जा रहा था, उसी का झव्बू छः रुपए पर किराए कर लिया।

यहां से मानसरोवर और मानसरोवर से तकलाकोट जाना था, वहां से भारतीय सीमा अति निकट है। उस हुणिए की सलाह तीन अगस्त को चलने की थी, इसलिए मुझे दो दिन यहां ठहरना पड़ा।

दरचन मन्दिर में तिब्बती क्रूरता की भयंकर व्यवस्था मालूम हुई। लामाओं ने एक बकरे को पकड़ कर उसका मुंह

और नाक कसकर बांध दिया; दम घुटने से पशु छटपटाने लगा; बेचारे ने तड़प तड़प कर प्राण दिए। अपनी इस क्रूरता का कारण इन्होंने यह बतलाया कि बौद्ध धर्म के अनुसार लामाओं को जीवहिंसा का निषेध है, इसलिए उस नियम की रक्षाहित पशु को शस्त्र से नहीं मारते, केवल दम बन्द कर देते हैं, पशु आपही मर जाता है! यह फिलासफी इन लामाओं की है। आज रात को कढ़ी और चावल बनाकर खाया। थके हारे सोगए। रात भर वर्षा होती रही।

२ अगस्त सोमवार—जिस हुणिए के साथ हमें जाना था, उसका नाम मैं 'बूझी' रखता हूं, क्योंकि वह बातें करते करते "बूझी! बूझी!!" कहकर चिल्लाता था। 'बूझी' आज कैलाश की परिक्रमा करने गया था। हमें भी यहीं ठहरना पड़ा। दरचन में पक्के मकान बने हैं। जिस मन्दिर में हम ठहरे थे वह दो मंज़िला और पका बना हुआ है। आज नमकीन रोटी बनाकर मक्खन के साथ खाई। तीन रोटी बूढ़े लामा को दे दी, इस पर मैनेजर हमपर बड़ा बिगड़ा और हमारा असबाब उठाकर बाहर फेंकने लगा। किसी प्रकार उसको मनाया, मिन्नत खुशामद की, उसे भी रोटियां दी, तब वह धूर्त कहीं शान्त हुआ। जिस दारिमा वाले व्यापारी ने झब्बू किराये पर करा देने में सहायता की थी वह भी 'बखसीश' मांगने आया। किसी प्रकार उसको भी रफा दफा किया। आज दिन भर वर्षा होती रही। रात को उसी मन्दिर में सोए। यह मन्दिर कैलाश जी के चरणों में बना हुआ है श्री कैलाश जी की प्रदक्षिणा का यह चौथा और अन्तिम मन्दिर है। यहीं प्रदक्षिणा खतम हो जाती है।

बाईसवां पड़ाव

मानसरोवर प्रस्थान

३ अगस्त मंगलवार—साढ़े आठ बजे के बाद 'बूफी' ने चलने की तय्यारी की। चल पड़े। सामने मैदान में नदियों की भरमार है। दो दिन जो वर्षा होगई थी, उसके कारण पर्वतों से जल उमड़ आया था। बरसात में तो दरचन से राक्षस ताल तक एक खासी बड़ी भील बन जाती होगी। यदि पिछली रात वर्षा बन्द न रहती तो आज हम किसी प्रकार मानसरोवर नहीं जा सकते थे। नदियों को लांघते, धाराओं को पार करते हुये निकल गये। सूखे ऊंचे मैदान में पहुंचे, यहां दारिमा वाले व्यापारिओं के कुछ पाल खड़े थे। उनसे मिले। एक व्यापारी के १२०० रुपये चोरी होगये थे; वह ग़रीब बड़ी दीनता से चोर के पता लगाने में मेरी मदद मांगने लगा। उसने समझा कि शायद यह साधू ज्योतिष विद्या द्वारा उस चोर का पता लगा सके। मैंने उसे बहुतेरा समझाया कि मुझ में यह योग्यता नहीं, लेकिन उसे विश्वास नहीं हुआ। उस दुखी पर मुझे बड़ी दया आई लेकिन मैं कर क्या सकता था।

सामने राक्षसताल सूर्य के प्रकाश में चमक रहा था। उसी की ओर बढ़े। रास्ते में पानी की दिक्कत रही। 'बूफी' राक्षसताल के पास नहीं जाना चाहता था, क्योंकि उसके बिलकुल निकट जाने से पांच चार मील का फेर पड़ जाता और मानसरोवर पहुंचने में रात हो जाती, इस लिये राक्षस ताल से डेढ़ मील फासले पर जो पगडण्डी मानसरोवर जाती है उसी को धर कर चले। आज भी डाकुओं का बड़ा भय

था और रास्ता उजाड़ बियावान ! इधर उधर देखते हुए, बड़ी तेज़ी से बढ़े चले गये। मेरे पाओं को रस्सी ने काट दिया था, चलते में कष्ट होता था, तो भी क्या, उन्हीं टाट के तलों को फिटफिटाता हुआ आगे बढ़ा। मेरे दहिने हाथ डेढ़ मीलपर राक्ष-सताल लहरे मार रहा था ; उसका दृश्य देखते हुए एक घास के मैदान में घुसे। मैं सब से पीछे रह गया। यहां रास्ता पह-चानना दुस्तर है; अनजान आदमी कहीं का कहीं निकल जाय। 'बूझी' तो झब्बू पर सवार था इस कारण उसे रास्ते की कठि-नाई क्या मालुम होती ; उसने हम लोगों की कुछ भी परवाह नहीं की। मरता क्या नहीं करता, लाचार होकर उसके पशुओं के साथ साथ भागना पड़ा। अत्यन्त कष्ट सहकर मानसरोवर के निकट पहुंचे। पांच बज गये थे। एक नाला सा सामने दीख पड़ा। मैंने उसके जल से प्यास बुझाने की ठानी किन्तु 'बूझी' ने मना कर दिया। बाद में पता लगा कि उसका जल नमकीन और हानिकारक था।

इस नमकीन नाले के पास ऊंचे टीले पर चढ़े। यहां गरम जल के चश्मे हैं उन्हीं के पास गुफा में डेरा डाला। थकान के मारे मुझसे चला नहीं जाता था ; पाओं में छाले पड़ गये थे। वहीं गरम जल से मैंने अपने पाओं को धोया, तत्पश्चात मानसरोवर देखने के लिए चला।

—:o:—

तेईसवां पड़ाव

मानसरोवर

गुफा से थोड़ी चढ़ाई चढ़ने पर मानसरोवर के पुनीत दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस मानसरोवर की महिमा बालकपन से सुना करता था; जिसके दर्शनार्थ भारत की करोड़ों आत्मायें लालायित हैं, जिसको देखने के लिये योरप के धुरन्धर विद्वान दूर दूर से आते हैं, जिसकी नैसर्गिक शोभा की प्रशंसा सब विदेशियों ने मुक्त कंठ से की है, उस मानसरोवर के दर्शन कर मैंने अपने आपको करोड़ों वार धन्य माना।

पाठक! पूर्व की ओर मुंह कर अपने आपको एक पहाड़ी पर खड़ा कीजिये। वह पहाड़ी टूटी दीवार की तरह ऊंची नीची आपके दहिने बायें चली गई है। आपके पीछे सूर्यदेव अपने दिन का कार्य पूरा कर धीरे धीरे अपनी शक्तियों को समेट रहे हैं। कृपाकर अपनी दृष्टि दौड़ाइये। आपके सामने सत्तर* मील परिधि की एक वृहत् झील है। उसके चारों ओर पर्वत-मालाएं हैं। वह देखिये दक्षिण की तरफ मान्धाता पर्वत की बर्फानी चोटिओं का प्रतिबिम्ब जल में कैसा मनोहर दीख पड़ता है। सामने, झील के पूर्वी किनारे पर, नीले पर्वतों की कतार कैसी शोभा बढ़ा रही है। उत्तर में कैलाश जी अपने साथी संगियों के साथ विहार कर रहे हैं। सरोवर का जल नीला नीला आंखों को क्या ही सुख देता है। वह देखिए, राजहंस, श्वेत बिलकुल श्वेत, अपनी सुन्दर पतली चोंचों से

*अङ्गरेज़ी लेखकों ने मानसरोवर की परिधि पैंतालीस मील लिखी है लेकिन परिक्रमा करने वाले भोटिया लोग इसको सत्तर मील से कम नहीं मानते— लेखक

जल में क्रीड़ा कर रहे हैं। उनका आलाप सुनिये; मस्तानी चाल देखिये; स्वच्छन्दता का विचरना निहारिये; किस निर्भयता से ये बातें कर रहे हैं। क्या इनको किसीका डर है? बिलकुल नहीं। यहां इन्हें पूरी स्वतन्त्रता है, किसी शिकारी के निशाने का भय नहीं। ये मनुष्यों की तरह बातें करते हैं, कैसी बड़ी आवाज़ है, इनके झुंड जलपर क्या मज़े में तैर रहे हैं। आहा! हा!! हा!!! क्या ही अनुपम छवि है।

* * * * * *

अब संध्या होना चाहती है। आइए चलें, कल सबेरे इस पवित्र सरोवर में स्नान कर अपनी यात्रा सफल करेंगे।

लौटकर गुफा में आगये। सत्तू खाकर पेट पूजा की। इस गुफा में विस्तरे लगा दिये; सारी रात होश नहीं रहा।

४ अगस्त बुधवार—भोर होते ही गुफा से निकले। 'बूझी' ने झब्बुओं पर असबाब लादा और चल पड़े। मानस-रोवर के किनारे किनारे चार मील तक चले गए। एक स्थान पर किनारा स्नान करने योग्य था, वहीं ठहर गये। सामने भास्कर महाराज खिले चेहरे से हँस रहे थे। निर्मल, स्वच्छ जल की लहरें मेरे पांओं के पास खेल रही थीं। यह दिन भी मेरे जीवन में बड़े पुण्य का था। कपड़े उतार दिये; मानसरो-वर के शीतल जल में प्रवेश किया। आज बहुत वर्षों की इच्छा पूर्ण हुई, परमात्मा को वार वार धन्यवाद दिया। झील बहुत गहरी है; जल बिलकुल साफ है।

यहां हमारी दस बारह चौन्दासी भोटिये यात्रियों से भेट हुई। इनमें स्त्रियां अधिक थीं। ये लोग तकलाकोट के लीपूलेख घाटे से तिब्बत में आए थे। इनकी इच्छा श्री कैलाश

दर्शन की थी। मैंने इनसे तकलाकोट के समाचार पूछे। तकलाकोट वाला घाटा, जोहारी, कुंगरी विंगरी वाले घाटे जैसा भयानक नहीं, यह केवल साढ़े सोलह हज़ार फीट ऊंचा है। मेरी इच्छा भी पहले इसी रास्ते तिब्बत प्रवेश करने की थी, किन्तु बागेश्वरी व्यापारियों के कहने से मैंने अपना प्रोग्राम बदल दिया था। इन धर्मात्मा चौन्दासी स्त्रियों ने सत्तुओं से हमारी सहायता की।

स्नान ध्यान से निवृत्त होकर दक्षिण दिशा की ओर मुंह किया*। बूझी आगे बढ़ गया था। सामने ऊंची घास से लदी हुई पहाड़ी पर चढ़े। तीन चार मील चलकर उस पहाड़ी से पूर्व की ओर रास्ता घूमता है। यहां पत्थरों का ढेर है। यह ढेर भुलक्कड़ यात्रियों को रास्ता बतलाता है। यहां खड़े होकर मानसरोवर की तरफ पुनः दृष्टि दौड़ाई। झील का दृश्य यहाँ से और भी बढ़िया है। मीलों लम्बे हरे हरे मैदान मानसरोवर के इर्द गिर्द हैं, जहां हज़ारों भेड़ बकरी मज़े में चर सकते हैं। दहिने हाथ की तरफ राक्षसताल की सुन्दरता भी कम नहीं, यहां खड़ा हुआ मनुष्य दोनों सरोवरों की बहार मज़े में देख सकता है। श्री कैलाश जी से मानसरोवर आने में भूमि नीची होती जाती है और मानसरोवर अधित्यका १५००० फीट की ऊंचाई पर है, इसका फैलाव बहुत दूर तक है। मानसरोवर से तकलाकोट की ओर जाने में फिर ऊंचाई शुरू होती है।

*डाकुओं के कारण अधिक ठहरना उचित नहीं समझा। यदि मेरे पास शस्त्र, काफी भोजन का सामान तथा खेमा आदि होता तो यहां पांच दस दिन अवश्य ठहरते। दुबारा जब जाऊंगा तो सब प्रबन्ध ठीक रहेगा—लेखक

यहां मैं और एक प्रेमी रास्ता भूल गये। 'बूझो' न जाने कहां चला गया। दोनों जने इधर उधर भटकते रहे। आज मेरे पाओं में दर्द था। धूपमें चलने से प्यास लग गई। राक्षस-ताल के किनारे आकर उसका जल पिया यहां ताल के किनारे हुणिओं के खेमें गड़े थे; उनसे तकलाकोट का मार्ग पूछा। उनके बतलाने पर पूर्व की ओर मुंह कर चल दिये। एक बज चुका होगा। दहिने हाथ घास का मैदान है और बाएं हाथ बर्फानी पहाड़, यही मान्धाता पर्वत है, इसीके साथ साथ जा रहे हैं। बड़े चक्कर काटने पड़े; ऊंचे नीचे मैदानों को तै किया; पांव छलनी हो गये; नंगे पैर चलना पड़ा; रस्सिओं ने पावों में घाव कर दिये।

चौबीसवां पड़ाव

गुरला मान्धाता पर्वत के पास

संध्या हो गई। पत्थरों से भरी हुई करनाली नदी के गल के पास एक चौड़े मैदान में पहुंचे हैं। करनाली यहां अपने बर्फ़ाना घर से निकल कर मैदान में आई है। इसको पार कर इसके दूसरे किनारे पर रात काटनी थी। शीत बर्फ़ानी जल में पांव डालता हूं, नदी का वेग पाओं के ज़ख्मों में नमक का काम करता है। पांव उखड़ते हैं, इनको अपनी मानसिक शक्ति से पत्थरों पर जमाता हूं। एक धार पार करली, दूसरी में अधिक ज़ल है; परब्रह्म का नाम लेकर इसमें पांव रखता हूं; बर्फ़ानी जल पांओं को काट रहा है; उनको सुन्न कर रहा है। लकड़ी को ज़ोर से दबा कर पांव उठाता हूं। धीरे धीरे, एक

कदम दो कदम, नदी पार करता हूं। सामने घास की ओट में 'बूझी' चाय बना रहा है; वहीं रात काटनी है।

रात को करनाली के किनारे रहे। यह रात भी कभी न भूलेगी। गुरला की बर्फानी चोटियां चमक रही हैं। रात को रोटी बनाकर खाई। घुटने जोड़कर लेटगया; सरदी के मारे नींद नहीं आई। कपड़े ओस से भीग गये हैं। शुभ्र चांदनी छिटकने लगी है। आहा! चन्द्रदेव के दर्शन हुए; क्या ही रम्य दृश्य था। घंटों बैठा इसी को देखता रहा, नदी की गड़गड़ के सिवाय झब्बुओं के जुगाली करने की आवाज़ आती है, साथियों में से कोई खुर्राटे भर रहा है। चन्द्रदेव धीरे धीरे हलके पड़ रहे हैं, सूर्य भगवान की सवारी आ रही है। कुछ प्रकाश हुआ। चलने की तैय्यारी कर ली।

५ अगस्त रविवार—आज कई नदियां पार कीं। करनाली की सहायक नदिओं का आनन्द देखते हुए कभी ऊंचे कभी नीचे के चढ़ाव उतार पूरे करते हुये, ग्यारह बजे के बाद एक पहाड़ी नाले के किनारे पहुंचे। यहां कुछ नाश्ता किया। फिर चले। कंकड़वाले मैदान तै कर लिये, अब नीचे उतर रहे हैं। दो बजे के करीब करनाली की घाटी में पहुंचे। यहां पहली बार लहलहाते खेत देखने में आए। जौ का खेत लहरें मार रहा था। छोटी छोटी नहरें काट कर स्थान स्थान पर भूमि सींची गई है। इधर उधर चारों तरफ हरे भरे मटर के खेत दिखाई देते थे। नीचे नीचे उतर रहे हैं; बहुत नीचे आगये। गुरला के १६००० फीट ऊंचे घाटे से चले थे, धीरे धीरे १३००० फीट तक आगये होंगे। छोटे छोटे ग्राम सामने हैं। हुणिओं की औरतें खेतों में काम कर रही हैं। ग्राम के बाहर भूत भगाने के सामान

हैं; 'ओम माने पद्मे हुं' की कतारें लगी हैं; झंडियां गड़ी हैं; मूर्तियां भी बनाई हुई हैं।

चार बजे के बाद तकलाकोट की पहली मण्डी में पहुंचे। यहां हज़ारों भेड़ें जमा थीं, दुकानें लगी हुई थीं। हमने रुकना उचित नहीं समझा। एक कठिन चढ़ाई चढ़ने के बाद दूसरी मंडी में पहुंचे। यहां श्रीलालसिंह जी के यहां ठहरने का प्रबन्ध किया। भोजन बना कर खाया, और मुर्दों की तरह सो रहे।

पच्चीसवाँ पड़ाव

तकलाकोट

मान्धाता पर्वत के ठीक नीचे तकलाकोट मण्डी है। व्यास, चौंदास, दारिमा, तथा नैपाल के व्यापारी इस मण्डी में अपना माल बेचने आते हैं। इधर के भारतीय घाटे का नाम लीपू लेख है। तकलाकोट से यह सात मील पर होगा। यह मण्डी यहां की तीन नदियों के संगम पर बसी है और इसके तीन तरफ ऊंची पहाड़ियां हैं। भूमि अत्यन्त फलदा है। नदियों के जल का नहरों द्वारा सदुपयोग किया गया है, चारों ओर भूमि सींचकर अन्न बोया जाता है। जहां जल नहीं पहुंचा वहां की भूमि तो गंज रूप धारण किये बैठी है। वर्षा इधर अधिक नहीं होती, जो कुछ अनाज उत्पन्न होता है वह सिंचाई द्वारा ही होता है।

तकलाकोट के ज़िले में सैंतीस ग्राम हैं। ये नदियों के किनारे बसे हैं। यहां के घर पत्थर के होते हैं, ऊपर से मिट्टी पुती रहती है; काम लायक अच्छे होते हैं। प्रत्येक ग्राम के पास

जौ और मटर के खेत देखने में आए। श्रीखोचरनाथ* मठ की ओर रास्ते में बराबर हरियाली ही हरियाली है। भूमि बड़ी उपजाऊ है। वृक्षों का सर्वथा अभाव न जाने क्यों है? जिस भूमि में जौ और मटर हो सकते हैं वहां फलों के वृक्ष क्यों न होंगे; मालूम होता है किसी ने यत्न ही नहीं किया।

भोटिए लोगों ने अपने घर दीवारें खड़ी कर बनाये हुए हैं; ऊपर से कपड़े तान लेते हैं। जब मण्डी का ऋतु होचुकता है तो कपड़े की छतों को उखाड़कर अपने अपने घर ले जाते हैं। दीवारें खड़ी रहती हैं। बहुत से घर गुफाओं के अन्दर हैं। जहां जिसको थोड़ी बहुत सुविधा मिली है, वहीं उसने खोद-खाद, लीप पोत कर घर का स्वरूप खड़ा कर लिया है। स्थानिमा से यह मण्डी बहुत अच्छी जगह पर है, यहां न तो उतनी सरदीही है और न हुणिओंका उतना जङ्गलीपन, करनाली नदी इनकी बहुत कुछ सफाई कर देती है। नदी के दोनों तरफ ऊंचे किनारे हैं। इन्हीं किनारों पर, चौरस भूमि में तकलाकोट की मंडी भरती है।

यहां एक मठ है। लामा लोग अपने चेले चेलियों के साथ यहां रहते हैं। छोटे छोटे लड़कों को चेला करते हैं। उनके सिर मूंड़ कर उनका नाम 'चुंग चुंग' धरते हैं। सोलह वर्ष की अवस्था में उन लड़कों की परीक्षा लेकर उपाधियां दी जाती हैं। जो ब्रह्मचर्य्य का कठिन व्रत लेकर दीक्षित होते हैं उनको 'गिलो' कहते हैं। साधारण लामाओं को कठोर नियमों का पालन नहीं करना पड़ता, ऐसे लामा तिब्बती भाषा में दाबा कहलाते हैं।

---

*श्री खोचरनाथ मठ तकलाकोट से छः सात मील पर है। यात्री एकही दिन में उसे देख आ सकता है—लेखक

तकलाकोट से दो मील के फासले पर टोग्रो नाम का ग्राम है। यहां सरदार ज़ोरावरसिंह जी की समाधि है। सन् १८४१ ई० में कश्मीर नरेश गुलाबसिंह जी की आज्ञा से सिक्ख सेना-नायक ज़ोरावरसिंह ने १५०० सैनिकों को साथ लेकर तिब्बत पर हमला किया था। कैलाश जी के पास बरखा के मैदान में उस शूरवीर ने ८००० तिब्बतियों को पराजित कर तकलाकोट में आकर डेरा जमाया। बाद में चीन सरकार ने तिब्बती लामाओं को सहायता के लिये फौज भेजी। ज़ोरावरसिंह, अपने बहादुर कप्तान बस्तीराम के सुपुर्द अपनी फौज कर आप मुट्ठी भर आदमियों के साथ अपनी धर्मपत्नी को लद्दाख़ छोड़ने चला गया ताकि लौट कर निश्चिन्तता से युद्ध कर सके। यही उसके नाश का कारण हुआ। चीनी फौज तिब्बतियों की मदद के लिये आ पहुंची और उसने ज़ोरावरसिंह को रास्ते में आघेरा। इतनी बड़ी फौज के सामने मुट्ठी भर आदमी क्या कर सकते थे, सब घिर गये और उनकी बोटी बोटी नोच ली गई।

अब बस्तीराम के लिये क्या रहगया, वह अपने साथियों के साथ भारत की ओर भागा। सामने लीपूलेख बर्फ से ढका था उसको पार करने में बहुत से सिक्ख सिपाही वीरगति को प्राप्त हुये; थोड़े से असह्य कष्ट झेलकर जीते घर पहुंचे और दूसरों का देश छीनने के पाप को आजन्म न भूले।

उसी सिक्ख सेनानायक ज़ोरावरसिंह की समाधि टोग्रो में है। तिब्बती लोग उस भारतपुत्र के वीरत्व की अब तक प्रशंसा करते हैं और उसकी समाधि को पूजते हैं।

मंडी में मैं छः अगस्त से नौ अगस्त तक रहा। अपने थके हुये शरीर को आराम दिया, भोटिया भाइयों को उपदेश भी

सुनाया। इनमें शिक्षा का बिलकुल अभाव है, शराब व्यभिचारादि दोष अधिक हैं। ये लोग हिन्दूधर्म से दूर हैं; इनमें तिब्बतीपन अधिक घुसा हुआ है।

ग्यानिमा मंडी की तरह यहां भी भोटिए व्यापारी हुणिओं के साथ माल का अदल बदल करते हैं। मानसरोवर के इर्द गिर्द घास के बड़े बड़े मैदान हैं इस लिये अधिकांश ऊन उधर से आती है। तकलाकोट के महाजन इस ऊन को खरीदकर तनकपुर भेजते हैं। वहां बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, धारीवाल आदि नगरों में स्थित कारवारी के एजन्ट सरदियों में इकठे होते हैं; तिब्बती ऊन यहीं खपती है।

आजकल मंडी ज़ोरों पर थी, खूब माल बिक रहा था। श्रीलालसिंह जी होशियार व्यापारी हैं; इनकी साधु महात्माओं पर भी बड़ी श्रद्धा है। आपके यहां ठहरने से मुझे सुख मिला, इसके लिये उनका मैं बड़ा कृतज्ञ हूं।

१० अगस्त मंगलवार—खच्चर की सवारी का प्रबन्ध कर लिया था। आठ बजे सवेरे चल पड़े। नदी पारकर दक्षिण दिशा की ओर चले। रास्ते में पांच चार मील तक मख़मली हरियाली आंखों को आनन्दित करती है। स्थान स्थान पर छोटी छोटी नालियां खोद कर पानी खेतों में पहुंचाने का प्रबन्ध हैं। सामने हिमालय है—इस तरफ़ तिब्बत और उस ओर प्यारा भारत—बढ़े चले गये। एक पथ-प्रदर्शक मेरे साथ था। हिमाचल के निकट पहुंचने पर ज़ोर की वर्षा आध घंटा भर हुई; नदी चढ़ गई; खच्चर ने उसको कठिनाई से पार किया।

अब लीपूलेख की ओर चलते हैं। एक छोटी नदी के

किनारे किनारे ऊपर ऊपर चढ़ रहे हैं। रास्ते में कई जगह भोटिये चरवाहे पशु चरा रहे थे। ऊपर चढ़ते हैं। हिमाचल पर बादल छाया हुआ है। सामने ऊंचे दाहिने हाथ नदी का ग्लेशियर है। खच्चर पर से उतर कर पैदल चढ़ रहा हूं। बाईं तरफ ऊंचे पर्वतों पर धुन्ध अपनी अठखेलियां दिखा रही है। गल पर पहुंच गये। यह छोटा ग्लेशियर है, इसको लांघ कर बाईं ओर चलते हैं। दोनों ओर गल ही गल हैं, सीधे जा रहे हैं। थोड़ी दूर जाकर दहिने हाथ ऊंचे चढ़ना है। उधर दृष्टि डालने से दरवाज़ा सा मालूम होता है। यही घाटा है। खच्चर पर सवार आहिस्ते आहिस्ते ऊपर चढ़ रहा हूं; पथप्रदर्शक ऊपर पहुंच गया। मैं भी खच्चर को चलने के लिये कहता हूं। चला, दस कदम और बाकी हैं; ऊपर लीपूलेख घाटे पर पहुंच गया।

छब्बीसवां पड़ाव

तिब्बत की ओर एक दृष्टि

१६७५० फीट ऊंचे इस घाटे पर खड़ा हूं। मेरे दहिने हाथ की ओर जो उतार है यह मातृभूमि की सीमा का आरम्भ है; बायें हाथ का उतार, जिसको चढ़कर आया हूं, तिब्बत की ओर जाता है। इधर ही एक दृष्टि दौड़ाता हूं। उत्तर पूर्व की तरफ़ मान्धाता की चोटियां अपनी शान दिखा रही हैं। यहां कुंगरीबिङ्गरी जैसी भयानक सरदी नहीं। अपनी यात्रा पर विचार करता हूं।

कुंगरी बिङ्गरी घाटे द्वारा पश्चिमी तिब्बत में प्रवेश करने के बाद भोजन को कैसे कैसे कष्ट झेलने पड़े, लेकिन मेरी यात्रा

का मूल्य मुझे मिल गया—मैंने वे दृश्य देख लिये जो संसार में अद्वितीय हैं। जिस तिब्बत का नाम ही सुनते थे उसे देख लिया, जिन लामाओं की कथा पढ़ते थे उनसे भेंट करली; जिस कैलाश जी के गुणानुवाद पुराणों ने गाए हैं उसके साक्षात दर्शन कर लिये; जिस मानसरोवर की महिमा योगी लोग बखानते हैं, उस की सुन्दरता देख ली; उसमें स्नान भी कर लिया; पाओं को बेशक बड़ा कष्ट हुआ, परन्तु वह कष्ट थोड़े ही दिन के लिये था। तिब्बती दृश्यों की शोभा का आनन्द सारी आयु भर न भूलेगा।

वाहरे तिब्बत! तूभी एक विचित्र देश है! संसार में सब से ऊंचा और सब से निराला है। क्याही अच्छा हो यदि तेरे बच्चे भी जाग उठें और संसार की गति के अनुसार अपने जीवन को बनालें। मेरी बड़ी इच्छा तेरे एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमने की है। मैं मानसरोवर के किनारे महीनों रहना चाहता हूं, किन्तु तेरी वर्तमान स्थिति में मेरा ऐसा करना असंभव सा है। जब तक चीन और भारतवर्ष सोते हैं तू भी तब तक खुर्राटे ही लेता रहेगा; चीन और भारत के भविष्य पर तेरा भविष्य निर्भर है।

तू धातुओं से परिपूर्ण तो है पर वे तेरे लिये कुछ लाभदायक नहीं। तेरे बच्चे मुश्किल से पेट पालते हैं। तेरे यहां जब तक शिक्षा ज़ोर शोर से न फैलेगी तब तक तेरी संतान की दशा भी सुधर नहीं सकती।

भगवान बुद्धदेव ने जो धर्म तेरे बच्चों को सिखलाया था वह बड़ा शुद्ध और निर्मल है। जब तेरे शिक्षक भारतवर्ष की धार्मिक अवस्था बिगड़ गई, तो तू कैसे अच्छा रह सकता था, अब भारत की दशा बदलने लगी है। क्या भारतपुत्र अपने प्यारे

शिष्य तिब्बत को भूल जायँगे ? कभी नहीं। तिब्बत पर हमारा धार्मिक अधिकार है; हमें तिब्बत को धर्म सिखलाना है। हमें अपने पूज्य तीर्थों—श्री कैलाश और मानसरोवर—पर अपने धार्मिक झंडे गाड़ने चाहियें। आवश्यकता है कि यहां हमारे मठ बनें, और हमारे धर्मोपदेशक अपने पुराने काम को नये उत्साह के साथ आरम्भ करें। क्या भगवान बुद्ध का परिश्रम वृथा ही जायगा ? कभी नहीं।

आर्य संतान ! उठिए भगवान शाक्य मुनि के पदों का फिर अनुसरण करिए। तिब्बत हमारी बाट जोह रहा है; वह आर्य सभ्यता से परिष्कृत होना चाहता है। आओ, एक बार फिर तिब्बत में आर्य्यसभ्यता का डंका बजायें।

चतुर्थ खण्ड

सत्ताइसवां पड़ाव

भारत में प्रवेश
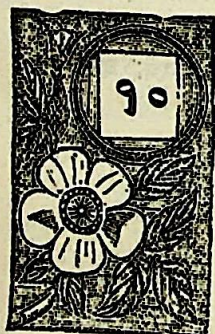
अगस्त मङ्गलवार—तीन बजे के करीब भारत में प्रवेश किया। हिमालय का यह द्वार लीपूलेख बड़े सुभीते का है; उतार की पगडण्डी नदी के किनारे किनारे चली गई है। यद्यपि उतार कहीं कहीं कठिन है मगर मार्ग में किसी प्रकार का भय नहीं लगता। न इधर ऊंटाधुरा जैसे ग्लेशियर ही हैं, और न वैसी विकट चढ़ाई ही। सुन्दर, सुहावनी हरियाली को देखता हुआ यात्री मज़े में चला जाता है। काली नदी यहीं से निकलती है; इसकी धार यहां बिल्कुल छोटी सी है।

घाटी में खच्चर पर चढ़ा हुआ जा रहा हूं, पथप्रदर्शक साथ है। दोनों ओर पहाड़ी दीवारों पर कहीं कहीं हिम पड़ी है; वह पिघल पिघल कर नीचे आरही है। रास्ते में व्यापारी लोग जाते हुए मिले। इधर इस घाटे में जगह जगह धर्मशालाएं हैं, ठहरने के स्थान बने हैं। पहाड़ी धर्मशालाएं मामूली एक मंज़िल की पत्थरों से छाई हुई, छोटे छोटे दरोंवाली होती हैं। दरों में किवाड़ नहीं लगाए जाते; जितने दर उतनी

ही कोठरियां बनी रहती हैं। उनके बनाने में पहाड़ी तेज़ हवा से बचने का ध्यान रखा जाता है। छत्तों की ऊंचाई इतनी कम होती है कि मनुष्य कोठरी में सीधा खड़ा नहीं हो सकता। साथही कोठरियां तङ्ग भी बनाई जाती हैं ताकि उनके गरम रखने में अधिक ईंधन की ज़रूरत न पड़े।

आज शाम को काली के किनारे ऐसी ही धर्मशाला में डेरा किया। एक यात्री उस धर्मशाला में पहले से ठहरा हुआ था। उसने रोटी बनाई। पेट पूजा कर आनन्द से सोरहे।

११ अगस्त बुद्धवार—कालापानी ग्राम में पहुंचे। यहां कई चश्मों से जल निकल निकल कर काली में गिरता है। भोटिए इन चश्मों के जल को काली का स्रोत समझ यहां बड़ी श्रद्धा से स्नान करते हैं। काली के किनारे किनारे जारहे हैं। काली नदी अल्मोड़ा ज़िले को नैपाल से अलग करती है—इस तरफ अल्मोड़ा है और नदी पार नैपाल—इधर से अपराधी उधर नैपाल के जङ्गलों में भाग जाते हैं। नदी का पाट तो बड़ा छोटा है किन्तु स्वरूप चामुण्डा जैसा है। अब हमको बराबर इसके किनारे बड़ी दूर तक जाना है। जैसे गोरी ने जोहार का रास्ता पर्वतों को काट कर बनाया है ऐसे ही काली ने इधर के पर्वतों को फोड़ कर बड़ी मुश्किल से अपना मार्ग निकाला है। आज कई दिनों के बाद देवदारू के वृक्षों की कतारें देखने में आईं; हिमालय के वन्य दृश्य फिर आरम्भ होगये। तिब्बत की रुंड-मुण्डता दूर हो गई। चित्त में कैसी प्रसन्नता होती है। वृक्षों की डालियां समीर के झोंकों से आनन्दित हो पहाड़ी राग गारही हैं। अपने हितकर, अपने अनुकूल जल वायु में आगए, यह बड़ा सुखदायी है। पवन के झकोरों में पास के पहाडी खेतों की सर सर ध्वनि सुनता हुआ जारहा हूं। मातृभूमि

किस प्रेम से स्वागत कर रही है; अपने बच्चे को गोद में ले रही है। आहा! इस आह्लाद का क्या वर्णन करूं।

तकलाकोट से गर्ब्यांङ्ग २७ मील है। आज मुझे वहीं जाना था। आधे से अधिक मार्ग तो पहले दिन ही आ चुके होंगे, आज का रास्ता आसान, दृश्य मनोहर, निर्मल आकाश, अनुकूल जलवायु—हंसता हुआ जा रहा था। तिब्बत से कुशल पूर्वक लौट आया, इसको स्मरण कर फूला न समाता था। जो उद्देश्य था वह हो गया। सच है किसी कार्य की सफलता का आनन्द भी बिलकुल निराला ही होता है।

अट्ठाईसवां पड़ाव

गर्ब्यांग

मध्यान्ह के बाद गर्ब्यांङ्ग के पास पहुंचे। यहां काली नदी का पुल पार कर ग्राम की तरफ आगये क्योंकि आज हम काली के नैपाल वाले किनारे किनारे आए थे। गर्ब्यांङ्ग इस ओर का आखिरी पोस्ट आफिस है जैसे जोहार की तरफ मनस्यारी सबसे आखिरी डाक घर है, ऐसे ही इधर गर्ब्यांङ्ग है। काली नदी का पुल पारकर ऊंची चढ़ाई चढ़ने के बाद गर्ब्यांङ्ग पहुंच गए। यहां मेरे इधर आने की सूचना कई प्रेमियों को पहले से थी इस लिये कोई कष्ट नहीं हुआ। रहने का ठीक ठाक कर लिया।

गर्ब्यांङ्ग की अधित्यका (प्लेटो) समुद्री तल से दस हज़ार फीट की ऊंचाई पर है, अल्मोड़े से साढ़े चार हज़ार फीट ऊंचा समझिये। लीपुलेख घाटे द्वारा तिब्बत में प्रवेश करने वाले व्यापारियों का यह मुख्य स्थान है इसलिये यहां अनाज

तथा अन्य विक्रियार्थ वस्तुओं का संग्रह किया जाता है। ब्यास चौंन्दास के लोग यहां आकर ठहरते हैं, और यहीं के पोस्ट-आफिस द्वारा उनका रुपया तिब्बत में जाता आता है। मई से अक्टूबर तक यहां स्कूल और डाकखाना आदि रहते हैं। जाड़ों में भोटिये लोग नीचे धारचूला में चले जाते हैं। यहां अच्छे पक्के सुदृढ़ घर बने हैं। लोगों की आर्थिक दशा अच्छी है। इनके चेहरे भी मंगोलियन हैं। अंग प्रत्यंग खूब मज़बूत होते हैं। सभ्यता का प्रभाव धीरे धीरे हो रहा है। समाचार पत्र आते हैं। यहां के विद्यार्थी अलमोड़ा पढ़ने जाते हैं। लोग बड़े उत्साही हैं। कुछ वर्षों बाद शिक्षा फैलने से इनके आचार व्यवहार अच्छे हो जायेंगे अभी तो तिब्बतियों की संगत से जहालत की टोकरी विद्यमान है। गलियां गन्दी, स्कूल के आस पास गन्दा, मकानों के आंगन गन्दे, कहां तक कहूं, सफाई के तो यह लोग मानो दुश्मन हैं।

यहां मैं तीन दिन रहा। मेरा स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था, खाना पचता नहीं था। तकलाकोट में एक दिन मैंने मोटे बड़े बड़े उड़द बनवा कर खाये थे। उस ऊंचाई में भला मोटे उड़द कैसे पक सकते हैं, मैं उनको कच्चे ही खागया, उसी भूल का दण्ड भरना पड़ा। एक सप्ताह भर मुझे अजीर्णता की शिकायत रही, इसके बाद फिर अच्छा होगया।

१४ अगस्त शनिवार—गर्ब्याङ्ग के आगे निरपनियां का बड़ा विषम और दुर्गम पथ है। आज कल वर्षा के कारण उसने भीषण रूप धारण किया था। कोई कुली मेरा असबाब उठाकर साथ जाना नहीं चाहता था। एक प्रेमी की सहायता से कुली का ठीक ठाक किया। आज भोजनोपरान्त चल पड़े।

गर्ब्याङ्ग से बुदी चार मील है। आज वहीं रात काटने की

सलाह थी। ग्राम से निकलते ही उतार आरम्भ हो जाता है, बुदी तक कठिन उतार है। तीन घंटे में मार्ग तै किया; बुदी के स्कूल में ठहरे; स्कूल के अध्यापक महाशय ने भोजनादि का यथोचित प्रबन्ध कर मुझे अनुगृहीत किया। रात यहीं रहे।

उन्तीसवां पड़ाव

निरपनियां

१५ अगस्त रविवार—सवेरे चले। बुदी से मालपा तक रास्ता ख़राब है; वर्षा के कारण रास्ता स्थान स्थान पर टूटा हुआ मिला। काली नदी काटखाने को दौड़ती है; उसीके किनारे किन रे जाना था। दो तीन जगह ऐसे जलप्रपात मिले जो यात्री के ठीक सिर पर गिरते हैं। ऊपर से जलप्रपात, नीचे काली का भयंकर नाद, गज़ भर के करीब चलने की जगह और उस पर काई जमीं हुई, ऐसे पथ पर चलने वाले यात्री की मानसिक परिस्थिति क्या होगी? इनका अनुमान पाठक स्वयं लगालें।

१२ बजे के क़रीब मालपा पहुंचे। यहां चट्टान के ऊपर घास की एक झोपड़ी है, इसी में डाकखाने के हरकारे लोग ठहरते हैं। इनका काम मालपा से गर्ब्याङ्ग तक डाक पहुंचाना है। मालपा से गलागाड़ आने जाने वाले हरकारे भी यहीं ठहरते हैं। काली नदी के ठीक सामने पर इनकी झोंपड़ी है। नदी की सारी लीला यहां से दिखाई देती है। एक दूसरा पहाड़ी नाला यहां काली में मिलता है। आज यह बड़े ज़ोर पर था। मैंने बहुतेरा यत्न इसके पार करने का किया मगर सफलता न हुई। बहुत अधिक जल इसमें न था, मुश्किल से मेरी कमर तक होगा पर धक्के गज़ब के देता था। जहां से मेरी इच्छा

इसे पार करने की थी वहां से काली पांच गज़ पर होगी ; ज़रा सा पाओं के उखड़ने की देर थी, बस फिर तो पार करने वाले का अन्त ही समझिये ।

इस तंग घाटी में खड़ा छटपटा रहा हूं । मेरे दहिने हाथ पहाड़ी नाला बड़े वेग से चट्टानों पर से कूदता हुआ आरहा है, बायें हाथ काली बड़ी निर्दयता पूर्वक चट्टानों का संहार कर रही है ; उस संगम पर मैं ऊंचे पत्थर का आश्रय लिए खड़ा हूं । मेरी कुछ भी पेश नहीं जाती, जल मेरा रास्ता रोक रहा है । सामने पहाड़ी नाले के पार गालागाड़ से आने वाला हरकारा बैठा है । वह बेचारा भी क्रोध से पहाड़ी नाले की ओर देख रहा है । नाले ने लकड़ियों के पुल को तोड़ डाला है । आज पुल नहीं बन सकता ; कल बनाया जायगा ।

पाठक, आप शंका करते होंगे कि पहाड़ी नाले ने पुल कैसे तोड़ डाला ? कृपया ज़रा इधर के पुलों का चित्र तो अपने मन में खींचिए । किसी वृक्ष की बड़ी मोटी लम्बी शाखा को काटकर नाले के आरपार रख देते हैं, बस यही इधर का पुल है । यदि उसमें कुछ वैज्ञानिक बुद्धि का प्रयोग करना हो तो एक लम्बे काष्ठ की बजाय दो काष्ठ रख दिए, और दोनों के बीच जो खाली स्थान रहा उसको पत्थरों से ढक दिया । ऐसा पुल इधर बड़ा सुदृढ़ समझा जाता है और उसपर हज़ारों रुपए के माल से लदे हुए पशु बेखटके आते जाते हैं । जिस काष्ठ के पुल पर हम लोग पांच दस रुपये मिलने पर भी पाओं न रखें, उस पर भोटिये लड़के बाज़ीगरों की तरह कूदते चले जाते हैं । यह सब अभ्यास की बात है ।

आज रात काली के किनारे गुफा में रहे । सारी रात जल

बरसता रहा । पिस्सुओं के मारे अच्छी प्रकार सोना नहीं हो सका ।

१६ अगस्त सोमवार—भोर होतेही हरकारे लोग नाले का पुल बनाने की चेष्टा करने लगे। मैंने तो एक हृष्टपुष्ट पहाड़ी नवयुवक की मदद से पुल बनाने के पहले ही नाला पार कर लिया। थोड़ी देर बाद दो चार आदमियों ने मिलकर एक मोटे लट्ठे को जल के आरपार रखा। इसी ख़ौफनाक एक-लट्ठे के पुल पर से बाकी सामान पार उतारा गया। पथप्रदर्शक के साथ आगे बढ़े। अब निरपनियाँ की विषमता मालूम हुई।

ऊंचे पर्वत पर चढ़ रहा हूं। रास्ता कहीं गज़ भर है, कहीं आध गज़, टूटा हुआ; पाओं फिसलते हैं। ऊपर चढ़ने में पौधों की टहनियां पकड़ पकड़ कर चढ़ता हूं। यदि कहीं भूल से पैर इधर उधर होजाय तो फिर सैकड़ों फीट नीचे घाटी में जाकर हड्डी हड्डी सब टूट जाए। रास्ता कीचमय है; मिट्टी फ़िसलाऊ है। ऊपर ऊपर जा रहा हूं। इस पहाड़ के ऊंचे शिखर पर पहुंचना है। काली नदी, नीचे, नीचे, नीचे, उसकी मंद मंद आवाज़ आ रही है। यह लो! गड़गड़!! वह सामने बड़ा ढोंका किस तेज़ी से नीचे फिसलता जारहा है; इसकी गर्जना हृदय को कम्पायमान करती है। परमदेव, परमदेव, आपही सहायक हैं।

पहाड़ के ऊपर शिखर पर पहुंचे। यहां से इर्द गिर्द दृष्टि दौड़ाई। बादल कहीं नीचे, कहीं चोटिओं पर विचर रहे थे। पूर्व की तरफ सामने नैपाल के पहाड़ हैं, उनकी चोटियां बादलों से ढकी हैं। वर्षा इस समय बन्द है। यहां बैठकर सत्तू खाए और कमण्डलु भर जल पिया। पथ-प्रदर्शक चलने

को कह रहा है; अभी ऐसे ऐसे दो तीन पहाड़ और पार करने हैं।

चल पड़े। अब नीचे उतररहे हैं। इधर बायें हाथ दृष्टि दौड़ायें तो आंख कहीं ठहरती नहीं, इकदम नीची घाटी है। कमज़ोर दिल मनुष्य को तो यह नीचाई देखकर ही चक्कर आने लगे। जैसे ऊंचे आए थे वैसे ही नीचे जारहे हैं। नीचे जाना ऊपर जाने से भी कठिन है; यहां गिरने का अधिक भय रहता है। एक तो महा कठिन उतार, दूसरे भीगा हुआ रास्ता, तीसरे बेढ़ब फिसलन, घास पकड़ पकड़ कर नीचे उतरता हूं, एक एक इञ्च भूमि के लिए लड़रहा हूं। उतरते उतरते, नीचे काली के किनारे पहुंचगए। अब फिर ऊपर चढ़ना है।

बड़ा भयङ्कर रास्ता है। पुराने मार्ग से, मीलों का चक्कर खाकर जाना है। जो रास्ता अधिकारियों ने बनवाया था उस को नदी बहा ले गई; आज कल पुराने बाबा आदम के समय के रास्ते से सब लोग आते जाते हैं। जिस पथ-प्रदर्शक के साथ मैं था, उस मूर्खने उस पुराने पथ को भी छोड़कर, ऐसा दुर्गम पथ धर लिया कि जिधर से भेड़ बकरी भी कठिनाई से जासकें। एक सीधी ऊंची चट्टान है; उसकी भीत पकड़, धीरे धीरे जा रहा हूं। यदि इस समय वर्षा होजाय तो मैं निस्स-न्देह नीचे घाटी में गिर पड़ूं। बैठ बैठकर चलता हूं; ओ ईश्वर! ऐसा रास्ता!! सारी यात्रा में निरञ्जनियाँ जैसा बेढ़ब पथ नहीं मिला। कई बार गिरते गिरते बचगया; धोखा देने वाला मार्ग है; यहां तेज़ आखों की आवश्यकता है। पथ-प्रद-र्शक को पुकार कर साथ साथ चलने के लिए कहता हूं। ओ३म्! ओ३म्!! का जाप करता हुआ जारहा हूं ताकि यदि

गिर भी जाऊं तो परमपिता का नाम स्मरण करते हुए प्राण निकलें।

*　　*　　*　　*

इस उतार के अन्त होने पर निरपनियां का भी अन्त हो जायगा। अब नीचे काली के किनारे पर फिर आगए। यहां पथ बिल्कुल टूटा है; पथ-प्रदर्शक की सहायता से किसी प्रकार इसे तै किया यहां से आगे यद्यपि चढ़ाई है पर रास्ता निरपनियां जैसा खराब नहीं। उस चढ़ाई को आरम्भ करने से पहले यहां नदी किनारे बैठकर सत्तू खाये, वर्षा होरही है।

तीसवां पड़ाव

गला गाड़

भीगते भागते चले। चढ़ाई चढ़ रहे हैं। सैकड़ों सीढ़ियां चढ़ गए। दो घंटे के बाद पहाड़ के ऊपर पहुंचे; यहां से गला-गाड़ दिखलाई देता है। पौन घंटे के बाद वहां पहुंच गए। यहां का बंगला रुका हुआ था; इस कारण ऊपर एक गृहस्थ के घर के पास ठहरे। खाने, पीने, सोने का प्रबन्ध सब हो गया। कपड़े भीग रहे थे, उनको सूखने के लिए डाल दिया; खूब आग जलाई। रात को पहाड़ों के टूटने और बड़े बड़े पत्थरों के खिसकने की गर्जना सुनते रहे। मुश्किल से तीन चार घंटे सो सका।

१७ अगस्त मङ्गलवार—गर्ब्याङ्ग की धर्मात्मा रूमा देवी ने मेरे लिए हरकारे के हाथ चावल और अन्य खाने का सामान भेजा था। उस देवी को मैं ने हृदय से धन्यवाद दिया। उस रसद से मुझे बड़ी सहायता मिली।

आज सवेरे गलागाड़ से चले, अच्छा मार्ग है, ऊंचे ऊंचे

चढ़ते चले गये। मुझे चौन्दास पहुंचना था। गलागाड़ से चौंदास १२ मील है। चढ़ाई के बाद बढ़िया उतार है। सीटी बजाता हुआ, भजन गाता हुआ जारहा थ।

तुमही करतार हो दुखों से बचाने वाले।
अपने भक्तों को सदा पार लंघाने वाले॥
भक्त पह्लाद को पर्वत से बचाया तैंने।
कष्ट भूमी में सदा साथ निभाने वाले॥

आनन्द में मस्त जा रहा था। जहां प्यास लगती झरनों का ठण्डा स्वच्छ जल पी लेता। पर्वतेश्वर हिमालय के सुरम्य दृश्यों को देख देख मन मुदित हो रहा था। देवदारू उन्नत मुख किये सुमधुर स्वर से सर सर नाद कर मेरे चित को आह्लादित करते थे। जंगलों की अनोखी छटा का मज़ा लेता हुआ आगे बढ़ा। सड़क कहीं कहीं घने वृक्षों से आच्छादित है; पादपों की शाखायें एक दूसरे के गले में बांह डाले प्रेम-पाश में बन्धी हैं। कहीं कहीं पत्तों पर से वर्षा के बिन्दु टप टप गिर रहे थे।

इकतीसवां पड़ाव

चौन्दास

इस प्रकार ठण्डी सड़क की सैर का सुख भोगते हुये एक स्रोत के पास पहुंचे। यहां बैठकर सत्तू खाए और पेट पूजा कर फिर बढ़े। अब पहाड़ी ग्राम दृष्टिगोचर हुये। कृषक लोगों की आवाज़ भी सुनाई देने लगी, पहाड़ी सीढ़ियों जैसे खेत फिर दिखाई दिए। ग्राम में पहुंचे तो वहां कई विद्यार्थियों से भेंट हुई। यह ग्राम पर्वत स्थली में स्थित है; इसके

चारों ओर अपूर्व दृश्य हैं; स्वर्गीया अमरीकन मिस शेल्डन का बंगला भी यहीं है। यहां कुछ देर सुस्ता लिया।

चौन्दास का इलाका भी बड़ा रमणीक है। जल वायु नीरोग, वन शोभा विशिष्ट, प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम और लावण्यमयी भू-श्री यहां विराज रही है। ६००० फ़ीट की ऊंचाई पर के ये ग्रामसमूह इन दिनों सुन्दर विहार स्थल बन जाते हैं।

*　　*　　*　　*

हिमाचल की इस रम्य पर्वत स्थली तथा व्यास और दारिमा की पट्टिओं में जो भोटिए रहते हैं, उनमें बड़ी बड़ी भद्दी रस्में प्रचलित हैं। जैसे पाश्चात्य देशों में स्त्रियों को स्वतन्त्रता है वैसे ही, बल्कि उससे भी अधिक स्वच्छन्दता इधर की स्त्रियों को दी जाती है। इनके यहां 'रामबंग' की चाल है। प्रत्येक ग्राम में एक घर ऐसा बनाते हैं जहां युवक और युवतियां रात को स्वतन्त्रता से मिल सकें। इस घर को 'रामबंग' अथवा 'क्लबहौस' कहिए। रात के समय युवक लोग अपनी प्यारी युवतियों के साथ यहां इकट्ठे होकर शृङ्गार रस के गीत गाते हैं; मद्यपान करते हैं; धूम्रपान कर हृदय जलाते हैं। सारी रात यही धन्धा रहता है। जब मद्य का नशा खूब चढ़ जाता है तो यहीं क्लब हौस में सो रहते हैं।

छोटी छोटी लड़कियां, आठ दस वर्ष की अवस्था से ही, इस भोटिआ क्लबहौस में जाना आरम्भ करती हैं। माता पिता खुशी से अपनी सन्तान को इस नाश-गृह में भेजते हैं। जब किसी युवक को लड़कियों के प्रेमालाप की चाह होती है, तो वह रात को अपने घर से निकल, किसी ऊंची चट्टान पर खड़ा हो अपने दोनों ओठों पर अंगुलियां रख सीटी बजाता

है। उस सीटी को सुनते ही युवतियां अपने घरों से आग ले ले कर निकलती हैं और 'रामबंग' की ओर चल देती हैं। ग्राम के अन्य नवयुवक भी सीटी सुनते ही प्रसन्न हो उधर ही मुंह करते हैं। वहां लड़कियां और लड़के आमने सामने बैठ जाते हैं; खूब नाच रंग होता है। यदि लड़कियों की इच्छा लड़कों के बुलाने की हो तो वे किसी चद्दर के सिरे को पकड़ कर हवा में हिलाती हैं, या सीटी देकर अपना अभिप्राय प्रगट करती हैं।

इस प्रथा का परिणाम बड़ा भयंकर है—जवानी की अवस्था, एकान्तस्थान, शराब की मस्ती, नाच रंग की हिल-मिल, रात का समय—इन सब कारणों से भोटिआ समाज में पातिव्रत धर्म का ह्रास होगया है। भोटिए भाई इस बात को बिल-कुल भूल गए हैं कि आर्य सभ्यता का श्रेष्ठ, सर्वोत्तम-रत्न पातिव्रत धर्म है इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस आपत्काल में आर्य क्षत्रियों ने इन कठिन, दुर्गम पर्वतों में आकर शरण ली थी, उस समय यहां के एकान्त—यहां की निर्जनता—ने उनको बेतरह सताया होगा। समय काटने के लिये उन्होंने कोई न कोई उपाय दिल बहलाने का किया होगा। परदा तो उनमें था ही नहीं इसलिये इस प्रकार की प्रथा का चल जाना आश्चर्य्यजनक नहीं है। सभ्यता के केन्द्र से दूर रह कर उन्होंने इसी तरीके से विवाह की समस्या को हल किया होगा किन्तु इस समय इस प्रथा को बहुत जल्द दूर करने की आव-श्यकता है। इस प्रथा से जारज सन्तान, व्यभिचार, भ्रष्ट कुला-चार आदि दुर्गुणों की समाज में वृद्धि होती है। लड़के लड़-कियां आपस में मिलें, वार्तालाप करें, एक दूसरे के स्वभाव की पहचान करें और उनका विवाह बड़ी अवस्था में आपस की स्वीकृति से हो, यह सब अच्छा है, परन्तु युवक और युव-

तिओं को मद्यमान की खुली छुट्टी, एकान्त में रातें काटना, शृङ्गार रस के गीत, ये सब ब्रह्मचर्य्य की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाने के सामान हैं। जहां तक हो सके इस प्रथा को शीघ्र दूर करना चाहिये। मैं अपने शिक्षित भोटिए भाइयों से नम्रता पूर्वक निवेदन करता हूं कि वे अपनी इस बुरी प्रथा का संशोधन कर अपनी समाज की रक्षा करें।

इधर के लोगों में एक और भी भौंडा रिवाज है जिसको ये लोग 'भ्रुङ्ग' कहते हैं। जब कोई आदमी या औरत मर जाती है तो उसके सम्बन्धी दाह कर्मादि से निश्चिन्त हो अपने ग्राम के बड़े बूढ़ों को बुलाकर भ्रुङ्ग के विषय में परामर्श लेते हैं। भ्रुङ्ग संस्कार के लिए एक तिथि निश्चित की जाती है। यदि मरनेवाला, पुरुष हो तो संस्कार के लिए नर पशु चुना जाता है। भेड़, बकरी, याक इन में से जो पशु उचित समझा जाए उसी को मृत प्राणी का प्रतिनिधि ठहराते हैं। बहुत से लोग जिनपर हिन्दू धर्म का प्रभाव पड़ा है याक (चंवर गाय) को इस कार्य्य के लिये काम में लाने के विरोधी हैं। वे भेड़ अथवा बकरी से वही मतलब निकालते हैं। निश्चित तिथि को मृतक सम्बन्धी पशु को ग्राम से बाहर एक ख़ास जगह पर ले जाते हैं, वहां उसे अच्छे अच्छे वस्त्रों से सजाते हैं। तत्पश्चात पशु पर जौ फेंके जाते हैं और उसे मृतक का सच्चा प्रतिनिधि बना श्मशान भूमि में ले जाते हैं, साथही उसके सींगों में सफेद कपड़ा बांध देते हैं।

तीसरे दिन मृतक की अस्थियां इकट्ठी करके उनको बड़े लम्बे जूतों में रख कर घर लाते हैं। कुछ कृत्य करने के बाद ग्राम के सब मनुष्य लम्बी कतारें बांध बांध कर नाचते हैं,

और इस प्रकार भूतों की तरह नाचते हुये मृतक के घर पहुंचते हैं; वहां बड़ा जलसा होता है; खूब दावतें उड़ती हैं, खाना खाने के बाद बड़ा गुलगपाड़ा करते हुये सब लोग पीतल के बर्तनों को बजाकर नाचते हैं; लड़कियां मशालें लेकर चलती हैं।

आखिरी दिन पशु को कपड़ों से सजाकर ग्राम के बाहर दूर ले जाते हैं। वहां सब लोग उस बेचारे निरपराध पशु को पीट कर दूर भगा देते हैं। जब पशु दूर ऊंचे पहाड़ों पर अदृश्य हो जाता है तो सब भोटिये गाते नाचते ग्राम को वापिस आते हैं और मुंडन तथा स्नानादि कर शुद्ध होते हैं। तिब्बती हुणिये कपड़ों से लदे हुये उस पशु की ताक में रहते हैं, जब भोटिये अपने ग्राम की ओर लौटते हैं तो वे उस अनाथ पशु को पकड़, काट कूट कर, खाजाते हैं।

यह इन भोटिओं की भुङ्गाली पिशाचिनी प्रथा है। आश्चर्य्य है कि इन लोगों में यह जंगलीपन कहां से घुस आया। मालूम होता है यह तिब्बती संसर्ग का दोष है। मेरी कई एक पढ़े लिखे भोटिओं से इस विषय पर बातचीत हुई थी, वे सब इस प्रथा के कट्टर विरोधी हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि वे अपने समाज में घोर आन्दोलन कर इस भौंडे संस्कार को दूर करेंगे और अपने बच्चों को हिन्दू संस्कारों की शिक्षा देंगे। अब रेल और तार का ज़माना है, डाकखाने खुले हुये हैं, अच्छी से अच्छी पुस्तकें पारसल द्वारा आसक्ती हैं, आवश्यकता है कि शुद्ध हिन्दू सभ्यता की पुस्तकों का प्रचार इन पर्वतों में किया जाये ताकि हमारे ये बिछुड़े हुये भारतीय बन्धु पुनः ऋषियों के बतलाये हुये मार्ग का अनुसरण कर सकें।

* * * * *

आज रात पटवारी महोदय के घर का आतिथ्य स्वीकार किया। यहीं रात कटी।

बत्तीसवां पड़ाव

खेला

१८ अगस्त बुद्धवार—चौन्दास से चला। पौन मील तक उतार होगा इसके बाद थोड़ी चढ़ाई, फिर बेढ़ब उतार प्रारंभ होता है। खेतों को देखता हुआ चला। नीचे काली के गूंजने की धीमी आवाज़ आ रही है, और नदी सफेद सूत के तागे की तरह दिखाई देती है। मुझे इसी के किनारे पहुंचना है। सड़क स्थान स्थान पर टूटी हुई थी, वर्षा से जगह जगह नाले बह रहे थे, कई जगह पहाड़ टूट गया था, किसी प्रकार सम्भल सम्भल कर इस बेढब सीधे उतार को पूरा किया। चौन्दास से ५००० फीट नीचे आगये, धौलीगंगा यहां दारमा से आकर काली में मिली है, इसका पुल पार कर फिर खेला की चढ़ाई चढ़ना शुरू किया। थोड़ी चढ़ाई चढ़ने के बाद ठहरने के स्थान पर पहुंचे। यहाँ बड़ा सुख मिला। भोजनोपरान्त थके हारे सोगये।

१९ अगस्त से २७ अगस्त तक—खेला पांच हज़ार फीट ऊंचा है। अच्छा बड़ा ग्राम है। यहाँ पोस्टआफिस है। दारमा और चौन्दास का यह नाका है। यहां से अस्कोट तीस मील होगा और अस्कोट से अलमोड़ा सत्तर मील—मुझे अभी एक सौ मील और जाना है। रास्ते में धारचूला, बलवाकोट, अस्कोट, थल, बेरीनाग आदि छः सात पड़ाव ठहरना है।

यहाँ खेला में मुझे एक पत्र मिला, जिसमें मुझे अल्मोड़ा न आने की सलाह दी थी और यह भी लिखा था कि यदि आप अल्मोड़ा आएँगे तो पुलिस आपको गिरफ़ार कर लेगी। भला मैं ऐसी बातों से क्यों डरता? मैंने आज तक कोई काम ऐसा नहीं किया था कि जिससे मुझे किसी प्रकार भी पुलिस का भय हो। शुद्ध जीवन व्यतीत करना और गीता के इस सुन्दर उपदेश को सामने रखना, बस यही मेरे जीवन का लक्ष्य रहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

जिसने इस अमृत का पान कर लिया है उसको कोई क्या डरा सकता है।

खेला से धारचूला दसमील होगा। काली के किनारे किनारे चल रहे हैं। काली भी विचित्र नदी है। इतनी बड़ी बड़ी पहाड़ी नदियां इसमें मिलती है पर यह डकार तक नहीं लेती; वैसी की वैसी ही बनी रहती है। भयंकर नदी है। एक स्थान पर पहाड़ी नदी का पुल नहीं था, वहां झूले द्वारा पार होना पड़ा। बायें हाथ काली और दहिने हाथ पर्वत के साथ साथ जारहा हूं। सड़क अच्छी है, मगर आजकल वर्षा के कारण इसकी दशा बिगड़ गई थी, मज़दूर लोग मरम्मत भी कर रहे थे।

तैंतीसवाँ पड़ाव

धारचूला

शाम को धारचूला पहुंच गए। यहां प्रेमी लोग आगे से ही बाट जोह रहे थे। अच्छा स्वागत किया ; बंगले में ठहरे। चार पांच दिन बड़े आनन्द से कटे ; काली में स्नान कर उसकी लहरों के थपेड़े खाये। धारचूला पांच चारसौ घरों की आबादी का अच्छा कसबा है। काली के उस पार नैपाल राज्य के अधिकारी रहते हैं। नदी के आर पार जाने आने के लिये रस्सियों का झूला है। दिन भर लोग आते जाते हैं। व्यास चौंन्दास के भोटिये शीतकाल में यहीं रहते हैं इस लिये उनके मकान आज कल खाली पड़े थे। यहां दो तीन उपदेश हुये ; लोगों ने बड़ी श्रद्धा से राष्ट्रीय सन्देशे को सुना ; शिक्षा की महत्ता उनको भली प्रकार मालूम हुई। पण्डित लोकमणि जी तथा पण्डित प्रेमवल्लभजी बड़े श्रद्धालु सज्जन निकले। आप दोनों ने मुझ थके हारे को आराम देने का यथोचित प्रवन्ध किया।

धारचूला से बलवाकोट दस मील है। यहाँ मध्याह्न समय में पहुंचे। आज रक्षा बन्धन था। इस लिये असकोट के धर्मात्मा क्षत्रीपुत्र श्रीमान खड्गसिंह जी काली नदी के तीर पर विप्रवरों के साथ ऋषि तर्पण कर रहे थे। इनके अनुरोध पर आज मैं यहीं ठहर गया। यहां पता लगा कि एक शेर बलवाकोट के आस पास जंगल में है। कई आदमियों को उसने खा लिया था। उसके डर के मारे ग्रामीण लोग अपने गांव से दूर घास काटने नहीं जाते थे। सब कोई उससे परेशान थे। श्रीखड्गसिंह जी उसी के मारने के लिये यहां ठहरे हुये थे- पर वह नटखट पशु इनके हाथ नहीं आता था। जहां उसने

आदमी खाया फौरन काली नदी पार कर नैपाल के जंगलों में घुस जाता था और जब उधर उसके पकड़ने के सामान होते तो नदी पार कर इधर बलवाकोट की तरफ आजाता था। काली नदी ऐसी भयंकर है कि तैर कर उसको पार करना मनुष्य के लिये महा कठिन है, लेकिन वह हिंसक पशु इसको कुछ भी नहीं समझता था। गाओं वाले वेचारे शस्त्रहीन उसके डर के मारे रात को सो भी नहीं सकते थे। वलवाकोट वड़ी गरम जगह है। यहां केवल एक रात वड़ी कठिनाई से रहा दूसरे दिन सवेरे असकोट की ओर चले।

असकोट यहां से बारह मील है। रास्ते में सुन्दर दृश्य खिल-खिलाती हुई धूप का आनन्द तथा काली के सहायक जल प्रपातों का नाद सुनते हुये बारह बजे के क़रीब गोरी नदी के पुल के पास पहुंचे। गोरी (जोहार) मनस्यारी की ओर से आकर अस-कोट के नीचे कुछ दूर जाकर काली से मिल गई है। यहां से इसके किनारे किनारे जोहार को रास्ता जाता है। जो यात्री तनकपुर के मार्ग से शोर होकर असकोट से जोहार के रास्ते कैलाश दर्शन करना चाहते हैं वे इसी मार्ग से मनस्यारी पहुंच सकते हैं। यहां गोरी के तटपर स्नान ध्यान से निश्चिन्त हो अस्कोट पर्वत पर चढ़े। दो तीन मील की विकट चढ़ाई चढ़ने के बाद नीरोग शीतल जल वायु में आगए। हिमाचल के नैस-र्गिक दृश्य फिर दिखाई दिये। इर्द गिर्द ऊंची पहाड़ियां मेघों से खेल रही थीं। यहां के रजवार महोदय ने प्रेम पूर्वक मुझे ठहराया। श्रीमान जगतसिंह जी महाशय का मैं बड़ा धन्यवाद करता हूं जिनसे मुझे बहुत कुछ बातें तिब्बत के विषय में अधिक मालूम हुईं। आप एक अंगरेज़ अधिकारी के साथ तिब्बत भ्रमण के लिये गए थे, और जो कुछ उस अंगरेज को

तिब्बत सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हुआ वह आप ही के दुभाषिया होने की बदौलत था। आप हिन्दी के परम भक्त और बड़े साधु स्वभाव के हैं। यहां दो तीन दिन आराम किया; वर्षा की बहार देखी।

चौतीसवां पड़ाव

असकोट

असकोट तकलाकोट से नब्बे मील है, और अलमोड़ा से सत्तर मील; तनकपुर रेलवे स्टेशन यहां से ८० मील पर होगा। असकोट पहले बड़ी रियासत थी और इसकी प्रभुता नैपाल से काबुल तक फैली हुई थी। समय के हेर फेर ने हिमाचल के इस उच्चस्थल पर भी अपना प्रभाव डाला और अब यह छोटे से ताल्लुके के बराबर है। यहां के क्षत्रियों का सम्बन्ध नैपाल के क्षत्रियों के साथ होता है। रंग रूप में मंगोलियन पन के चिन्ह इनमें नहीं हैं। बहुत ही अच्छा हो यदि राजपूताना तथा अन्य प्रान्तों के राजपुत्रों के विवाह सम्बन्ध इस ओर होने लग जायें ताकि परस्पर की बिभिन्नता दूर होकर एकता के सूत्र की वृद्धि हो।

२८ अगस्त से २ सितम्बर तक मैं असकोट में दो तीन दिन रहा, यहां का जलवायु बड़ा नीरोग है। मेरी इच्छा यहां कुछ दिन ठहरने की थी, पर अल्मोड़ा से अपने एक प्रेमी का पत्र पाकर मैंने अपना प्रोग्राम बदल दिया। मुझे पता लगा कि संयुक्त प्रान्त की खुफिया पुलिस के धूर्त्त अधिकारी चिरंजीलाल ने मेरे विरुद्ध बहुत सा षड़यन्त्र रचा है। उसने भारत के वाइसराय, लार्ड हार्डिञ्ज, के कानों तक यह झूठी बात पहुंचा

दी कि स्वामी सत्यदेव, तिब्बत की ओर से भारत पर धावा करने वाले बाग़ी हिन्दुस्तानियों के साथ मिलने के लिए तिब्बत गया है। उस मूर्ख चिरंजीलाल की समझ में यह आया कि कैलाश यात्रा का तो केवल मेरा बहाना मात्र था, मैं कौम परस्त हिन्दुस्तानियों के दल में सम्मिलित होने के लिए भारत से भाग कर तिब्बत चला गया हूं। अंग्रेज़ी सरकार की आंखों में धूल झोंक कर इस देश द्रोही चिरंजीलाल ने मेरे पकड़ने का परवाना वाइसराय महोदय से प्राप्त कर लिया, और मेरी गिरफ़्तारी की कुल तैयारियां कर दल बल के साथ अल्मोड़ा आ पहुंचा और चारों तरफ़ पुलिस के दूत दौड़ा दिए। मुझ गरीब को चिरंजीलाल के इस प्रपंच की कुछ भी ख़बर न थी। मैं तो कैलाश यात्रा के लिये ही गया था और उसको पूरा कर भारत लौट रहा था। चिरंजीलाल को जब यह मालूम हुआ कि सत्यदेव वापस आ रहा है तो उसके हाथों के तोते उड़ गये, क्योंकि मेरे इस प्रकार वापस आने से उसकी बुरी तरह पोल खुलती थी। उसने भिन्न भिन्न नगरों से मेरे नाम खुफिया चिट्ठियाँ भेजवायीं और यह डर दिखलाया कि यदि मैं भारत लौट आऊँगा तो गवर्नमेंट मुझे गिरफ़्तार कर लेगी; साथ ही यह भी लिख दिया कि भाई परमानन्द जी के पास जो खुफ़िया पत्र मैंने भेजे थे, वे सब पकड़े गये हैं। इन पत्रों को पाकर मुझे हँसी आई और चिरंजीलाल के कमीनेपन पर अफसोस हुआ। स्वार्थी पुरुष नीच से नीच कर्म करने से भी नहीं हिचकिचाता। वह अपने स्वार्थ के लिए अपनी जननी को भी वेच सकता है। मैंने इस चिरंजीलाल का कभी कुछ नहीं बिगाड़ा था। लेकिन जब से मैं अमेरिका से लौटा था, इस नीच ने मेरे विरुद्ध अत्यन्त झूठी बातें संयुक्त प्रान्त के अधि-

कारियों के कानों में भर दी थीं। अंग्रेज़ हाकिम कानों के कच्चे तो होते ही हैं, उन्होंने सत्य बात जानने की कभी कोशिश न की और एक निरपराध व्यक्ति के विरुद्ध पुलिस के दफ़्तर काले किये। ऐसी ही झूठी बातों को फैलाकर चिरंजीलाल सरकार का बड़ा प्यारा बन गया और उसकी पहुंच देश के बड़े २ राज्य कर्मचारियों तक होगई। बहुत वर्षों तक इस अधम ने मेरा पीछा किया और बराबर मेरी डाक खुलती रही, साथ ही मेरे ही आदमियों द्वारा मेरी तलाशियाँ भी करवा लीं। मैं सदा सत्य के रास्ते पर चलता रहा हूं इस लिए कभी कोई मौका पुलिस को मुझे पकड़ने का नहीं मिला।

खुफिया विभाग के इसी प्रपंच के कारण अल्मोड़ा में मेरी गिरफ़्तारी की ख़बर चारों तरफ फैल गई। मेरे प्रेमी घबड़ा गये। उसी घबड़ाहट के वशीभूत होकर उन्होंने मुझे भारत न आने की सलाह दी थी। असल में यह मायावी जाल खुफिया पुलिस का फैलाया हुआ था। असकोट में जब मुझे ऐसे पत्र मिले तो मैं फौरन ताड़ गया, क्योंकि भाई परमानन्द जी के साथ मेरा कभी भी पत्र व्यवहार नहीं हुआ था, इसलिये चिरंजीलाल की सब धूर्त्तता मुझे फौरन स्पष्ट होगई। *

---

* कैलाश यात्रा करने के बाद जब मैं अल्मोड़ा पहुंच गया तो कुछ दिनों के बाद एक खुफ़िया पुलिस का आदमी, साधू वेष में मेरे पास आया और मुझसे पूछने लगा—"क्या असकोट में हथियार मिल सकेंगे ?" मैं उसकी शरारत समझ गया। मैंने उसे फटकार कर अपने स्थान से निकाल दिया। यह टिकटिकी पंजाबी था। इस प्रकार खुफिया पुलिस के टिकटिकियों द्वारा न जाने मैं कितनी बार भयानक परीक्षाओं में डाला गया हूं—लेखक

मैंने वे सब पत्र फाड़कर फेंक दिये। बे इख़्तियार मेरे मुंह से निकला--

जिन्हां रक्खे साइयां मार न सक्के कोय।
बाल न बांका कर सके जो जग वैरी होय॥

वाली बात है; निश्शंक निर्द्वन्द हो अल्मोड़ा की ओर प्रस्थान किया। यहां से अल्मोड़ा की तरफ सुन्दर सड़क गई है। कुली असबाब उठायें ले जा रहा था। इधर के मज़दूर बोझा उठाने में गज़ब करते हैं, दो दो मन बोझ पीठ पर लाद ऊंची ऊंची चढ़ाई चढ़ जाते हैं। इस सड़क पर जगह जगह जंगलों से वर्षा का पानी आ रहा था। असकोट से सात मील पर चौरस भूमि में डीडीहाट है, यहां एक पाठशाला है, दो तीन दुकानें हैं। यहां मैं नहीं ठहरा तेज़ी से बढ़ा चला गया। मुझे आज थल पहुंचना था।

पैंतीसवां पड़ाव

थल से बेरीनाग

यह ग्राम रामगङ्गा के किनारे बसा है। साल में एक बार संक्रान्ति के मौके पर यहां भी मेला भरता है और छः दिन तक रहता है। जैसे बागेश्वर के मेले में भोटिये लोग माल बेचते हैं ऐसे ही यहां भी ये लोग तिब्बती घोड़े, चंवर, चुटके, थुल्मे, पंखियाँ, नमक, सुहागा आदि बेचते हैं। अल्मोड़े से कपड़ा, बर्तन, तम्बाकू मिश्री आदि चीज़ें यहां बिकने आती हैं। यहां एक पाठशाला और छोटा डाकखाना भी है। थल डीडीहाट से दस मील पर होगा; रास्ते में तीन मील का उतार पड़ता है।

मध्यान्ह के बाद तीन बजे थल पहुंचे । यहां भी भोटिए लोगों ने बड़े आदर सत्कार से ठहराया। पहाड़ी लोग सुस्त हैं मगर भोटिये बड़े होशियार हैं। ब्राह्मण, क्षत्री भूखे कठिनाई से दिन बिता रहे हैं लेकिन ये लोग व्यापार कर आनन्द से जीवन काटते हैं। यह सब उद्योग की बात है। उच्च वर्णों के लोग नौकरी के फेर में पड़े हैं, वे नौकरी के सिवाय दूसरा धन्धा नहीं जानते; परिणाम यह है कि उनकी दशा बड़ी हीन है।

* * * * *

रामगङ्गा के यहां फिर दर्शन हुये। तेजम में इससे बातें की थीं, उस समय इसका जल स्वच्छ था, आज कल इसका पेट बढ़ गया है, रंग बदला हुआ है; सरयू जी से भेंट करने को बड़ी शीघ्रता से जा रही है।

रात को यहीं ठहरे। चलने की जल्दी थी इसलिये उपदेश आदि का प्रबन्ध नहीं किया; इच्छा शीघ्र अल्मोड़ा पहुंचने की थी। दूसरे दिन सवेरे चल पड़ा। तीन मील बराबर मैदान चला गया है। जंगल की शोभा अनुपम है। आगे अच्छी मज़ेदार चढ़ाई है, ठण्डी सड़क है, कुछ दिक़्क़त मालूम नहीं होती। रास्ते में एक नाले के पास स्नान ध्यान से निश्चिन्त हो गया। दस बजे सवेरे बेरीनाग पहुंचा, यहां डाकखाने में मेरी डाक जमा थी, इसलिये यहां पांच चार घंटे व्यतीत किये।

बेरीनाग अल्मोड़ा से ब्यालीस मील पूर्व की ओर है। इसकी ऊंचाई छः हज़ार फीट से कुछ अधिक ही होगी। यहां चाय के बड़े २ बग़ीचे हैं और इस जगह से हज़ारों रुपये की

चाय हर साल बाहर जाती है, खासा व्यौपार होता है। यहां पोस्ट-आफिस, डाक बंगला, पाठशाला, गिरजाघर सभी कुछ है; गोरे ज़मीदारों तथा ईसाइयों का यहां ज़ोर है और वे ही अधिकांश चाय के बग़ीचों के स्वामी हैं।

मुझे यहाँ अधिक नहीं ठहरना था। रायबहादुर कृष्णसिंहजी* यहां से छः सात मील पर झलतोला में रहते थे, मुझे उन्हीं के पास जाना था। मध्यान्ह बाद उनका आदमी घोड़ा लेकर आया। शाम को झलतोला पहुंचे। यह भी रमणीक स्थान है; जल वायु नीरोग और दृश्य मनोहर हैं; पंचाचूली की चोटियां यहां से स्पष्ट दिखाई देती हैं और जब उन पर सूर्य्य की किरणें पड़ती हैं तो अजब बहार होती है।

मैं यहां दो सेपटेम्बर तक रहा; यात्रा की थकान को दूर किया। रायबहादुर कृष्णसिंह जी बड़े देशहितैषी सज्जन थे। आप अपनी शक्ति अनुसार देशहितकार्यों में योग देने में सदा तत्पर रहते थे। यद्यपि आप बृद्ध थे पर उत्साह आपका युवकों जैसा था। आपने पूर्वी पश्चिमी तिब्बत में कई वर्षों तक भ्रमण किया और अत्यन्त कष्ट सहन कर वहां के नकशे तय्यार किए। तिब्बत-अन्वेषण में आप—"A. K. Pandit ए० के० पण्डित" के नाम से प्रसिद्ध थे। आपसे तिब्बत सम्बन्धी वार्तालाप कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। तिब्बत सम्बन्धी जितना ज्ञान आपको था शिक्षित संसार में उतना दूसरों को कम होगा। दुख है कि आपकी वाकफियत से हिन्दी संसार को कुछ लाभ नहीं पहुंचा। यदि आप अपने तिब्बत-अन्वेषण

*दुःख है कि रायबहादुर कृष्णसिंहजी का कुछ वर्ष हुए, देहान्त हो गया। अब उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री दुर्गासिंहजी रावत झलतोला में रहते हैं—लेखक

की यात्रा पर कोई ग्रन्थ लिख डालते तो वह अपने ढङ्ग की अद्वितीय पुस्तक होती।

छत्तीसवां पड़ाव

यात्रा का अन्त

३ सेपटेम्बर शुक्रवार—झलतोला से अल्मोड़ा ३६ मील होगा। बड़ी सुन्दर सड़क बेरीनाग से अल्मोड़ा तक गई है। जैसे कोई सैलानी आदमी ठण्डी सड़क की सैर करने जाता है, ठीक ऐसा ही रास्ता है। आनन्द से घोड़े पर सवार शीतल वायु की अठखेलियां देखता हुआ चला गया। रायबहादुर साहब ने घोड़े का प्रबन्ध करदिया था इसलिए पैदल चलना नहीं पड़ा। आज कल यह मार्ग विचरने योग्य होता है। धोप धाप वृक्ष, हरियाली से लदी हुई पहाड़ियां, स्थान स्थान पर जल की कलकल ध्वनि, पशुपक्षी सब प्रसन्न, वर्षा का अन्त—सचमुच मनुष्य को खुशी के मारे नशा सा चढ़ जाता है। भला मैदान के रहने वाले इस सुख को क्या जानें। लू में मरने वाले, धूल फांकनेवाले, पसीने की बदबू में बसनेवाले इस मज़े को अनुभव नहीं कर सकते। यह मज़ा सचमुच सब से निराला है।

सड़क पर जाता हुआ यही सोचरहा था—"ईश्वर ने अपने प्यारे भारतिओं को क्या ही सुन्दर सुहावना देश दिया है। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम चारों ओर रमणीक पर्वतमालायें हैं क्या हम उनसे लाभ उठाते हैं? बिल्कुल नहीं। गरमियों में झुण्ड के झुण्ड यात्रियों को इधर आना चाहिए; इधर की नैसर्गिक छटा का सुख भोगना चाहिए। इन पर्वतों पर अच्छा

अच्छी पाठशालाओं की आवश्कता है; यहां बड़े बड़े कालिज खुलने उचित हैं। अमरीका और यूरुप में प्राकृतिक शोभा विशिष्ट पर्वत-स्थलियों में कैसे कैसे विश्व-विद्यालय खुले हुए हैं; वहां के विद्यार्थी कैसे बलिष्ठ होते हैं। क्या हमारे यहाँ वैसे स्थानों की कमी है? नहीं, फिर क्यों हमारे लीडर उनका सदुपयोग नहीं करते? हा! इस प्रश्न का उत्तर लिखते हुए छाती फटने लगती है। जिन सुरम्य स्थानों पर कालेज, विश्वविद्यालय, गुरुकुल, ऋषिकुल आदि बनने चाहियें वहां भैंसे और बकरे कटते हैं।

भारत सन्तान! अपने देश के पर्वतों का सदुपयोग करना सीखिए। ग्रीष्म ऋतु में अपने आसपास के पहाड़ों पर जाकर वहां की प्राकृतिक शोभा देखिए; प्रकृति माता से बातें करने का अभ्यास कीजिए। अपने देश के पर्वतों को छान डालिए; उनकी वन्यता का उपयोग जानिए। यदि आप सामर्थ्यवान हैं तो पर्वतों में अपना ग्रीष्म-गृह बनवाइए और इर्द गिर्द की भूमि में निर्धन विद्यार्थियों के रहने लायक़ मकान बनवा दीजिए ताकि मैदान के विद्यार्थी छुट्टियों में आकर वहां रह सकें। अपनी सुस्ती निकालने के लिए हमें पहाड़ों में विचरने की आवश्यकता है; हमें अब पहाड़ों को अपनाने की ज़रूरत है।

परन्तु एक बात का ध्यान रखना होगा। अब तक तो मैदानवालों की बुराइयां ही पहाड़ों में पहुंची हैं; अबतक अधिकांश कामान्ध धनी, राजे नब्बाब पहाड़ों में व्यभिचार फैलाने के लिए ही जाते हैं, अबोध पहाड़ी कन्यायें उनके अत्याचारों से अत्यन्त दुखी हैं; वे धन के लिए बेची जाती हैं। हमारा उद्देश्य पर्वतों में शिक्षा प्रचार, आरोग्यता लाभ और प्राकृतिक दृश्यों की मनोहारिणी छवि देखना होना चाहिए। हमें पर्वतों

में विद्या-केन्द्र बनाने उचित हैं। जो लोग केवल यात्रा के विचार से—मन्दिरों को हाथ लगाने के लिए गिरि कन्दराओं में घूमते हैं उनको कुछ यथेष्ट लाभ नहीं होता। अपने पूज्य मन्दिरों के दर्शन कीजिये, किन्तु साथ ही आंख, कान खोलकर प्राकृतिक सुन्दरता भी अनुभव करते जाइए, खाली धक्के खाने से कुछ लाभ नहीं होता।

* * * *

चार सितम्बर को धौलछीना से सवेरे ही चलकर ग्यारह बजे के करीब अल्मोड़े पहुंच गया। १६ जून को मैं यहां से श्री कैलाश दर्शन के लिये निकला था, अढ़ाई महीने से कुछ अधिक दिन मुझे इस विकट यात्रा में लग गये।

यहां अल्मोड़े में मेरे विषय में तरह तरह की चर्चा फैली हुई थी। कोई कहता था—"सत्यदेव के नाम का वारन्ट निकला हुआ है और पुलीस उनको पकड़ने के लिये असकोट गई हुई है"। किसी ने उड़ाया—"सत्यदेव तिब्बत भाग गये और अब जरमनी जारहे हैं"। बड़े बड़े पढ़े लिखों में ऐसी ही बातें फैल रही थीं। जो प्रेमी मिलने आते वे यही कहते—"हमने सुना था कि आपके नाम का वारन्ट निकला हुआ है।" डाक जो मिली थी उसमें भी विचित्र चिट्ठियां नीचे मैदान से आई थीं। कई सज्जनों ने विहार प्रान्त से पत्र भेजे—"हमने सुना है आपके व्याख्यान एक वर्ष के लिये बन्द कर दिये गये हैं।" कहां तक लिखूं। मैंने जो एक वर्ष के लिये, व्याख्यान बन्द कर देने का नोटिस निकाला था, उसके मूर्ख लोगों ने तरह तरह के अर्थ लगाये और मुझे बदनाम करने के लिये घृणित से घृणित बातें फैलाई गई। भारतवर्ष की

जनता अनपढ़ है, वह गप्पों पर झट विश्वास कर लेती है। उसमें सोचने की बुद्धि नहीं। जिस साहित्य सम्बन्धी कार्य तथा मानसिक शक्ति उपार्जन के निमित्त मैंने एक वर्ष तक एकान्त सेवन का विचार किया था लाचार होकर मुझे कुछ काल के लिए उस विचार को स्थगित कर देना पड़ा। इस अभागे देश की ऐसी दुर्दशा है कि यहां मार्ग में कांटे बोनेवाले अधिक हैं मगर कार्य में हाथ बटाने वाले नहीं हैं। कई भले-मानसों का तो झूठी बातें उड़ाना पेशा ही है।

पाठक महोदय! साधन रहित, फोटोग्राफर के बिना, योरपीय महाभारत के समय में मैंने श्री कैलाश जी की यात्रा की थी। जो कुछ वर्णन, जो कुछ यात्रा का ब्योरा, मैंने दिया है वह आधुनिक 'सचित्र-युग' की परिभाषा के अनुसार तो है नहीं, मगर मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी यह पुस्तक बहुत से सज्जनों को श्री कैलाश दर्शन के लिये प्रेरित करेगी। मुझे आशा है कि कोई योग्य हिन्दी हितैषी महाशय, साधन सम्पन्न होकर, तिब्बत जायेंगे और वहां का सचित्र वर्णन हिन्दी संसार की भेंट करेंगे।

कैलाश दर्शन तथा मानसरोवर स्नान कर मैंने अपने जीवन की एक बड़ी इच्छा को पूर्ण किया। जो कुछ मुझे वहां आनन्द मिला मैंने हिन्दी संसार को उसका भागी बनाने का यत्न किया है। यह पुस्तक केवल मेरे हृदय के उद्गार हैं। मैंने किसी योरपीय वैज्ञानिक की तरह, अथवा अल्मोड़ा के किसी राजकर्मचारी की तरह बीस बीस मनुष्यों का बोझा लाद कर तिब्बत की यात्रा नहीं की थी, मैं केवल एक कठिन व्रत पालनार्थ वहां गया था। उन दिनों जब कि भारत के सब

में विद्या-केन्द्र बनाने उचित हैं। जो लोग केवल यात्रा के विचार से—मन्दिरों को हाथ लगाने के लिए गिरि कन्दराओं में घूमते हैं उनको कुछ यथेष्ट लाभ नहीं होता। अपने पूज्य मन्दिरों के दर्शन कीजिये, किन्तु साथ ही आंख, कान खोलकर प्राकृतिक सुन्दरता भी अनुभव करते जाइए, खाली धक्के खाने से कुछ लाभ नहीं होता।

* * * *

चार सितम्बर को धौलछीना से सवेरे ही चलकर ग्यारह बजे के करीब अल्मोड़े पहुंच गया। १६ जून को मैं यहां से श्री कैलाश दर्शन के लिये निकला था, अढ़ाई महीने से कुछ अधिक दिन मुझे इस विकट यात्रा में लग गये।

यहां अल्मोड़े में मेरे विषय में तरह तरह की चर्चा फैली हुई थी। कोई कहता था—"सत्यदेव के नाम का वारन्ट निकला हुआ है और पुलीस उनको पकड़ने के लिये असकोट गई हुई है"। किसी ने उड़ाया—"सत्यदेव तिब्बत भाग गये और अब जरमनी जारहे हैं"। बड़े बड़े पढ़े लिखों में ऐसी ही बातें फैल रही थीं। जो प्रेमी मिलने आते वे यही कहते—"हमने सुना था कि आपके नाम का वारन्ट निकला हुआ है।" डाक जो मिली थी उसमें भी विचित्र चिट्ठियां नीचे मैदान से आई थीं। कई सज्जनों ने विहार प्रान्त से पत्र भेजे—"हमने सुना है आपके व्याख्यान एक वर्ष के लिये वन्द कर दिये गये हैं।" कहां तक लिखूं। मैंने जो एक वर्ष के लिये, व्याख्यान बन्द कर देने का नोटिस निकाला था, उसके मूर्ख लोगों ने तरह तरह के अर्थ लगाये और मुझे बदनाम करने के लिये घृणित से घृणित बातें फैलाई गईं। भारतवर्ष की

जनता अनपढ़ है, वह गप्पों पर झट विश्वास कर लेती है। उसमें सोचने की बुद्धि नहीं। जिस साहित्य सम्बन्धी कार्य तथा मानसिक शक्ति उपार्जन के निमित्त मैंने एक वर्ष तक एकान्त सेवन का विचार किया था लाचार होकर मुझे कुछ काल के लिए उस विचार को स्थगित कर देना पड़ा। इस अभागे देश की ऐसी दुर्दशा है कि यहां मार्ग में कांटे बोनेवाले अधिक हैं मगर कार्य में हाथ बटाने वाले नहीं हैं। कई भले-मानसों का तो झूठी बातें उड़ाना पेशा ही है।

पाठक महोदय! साधन रहित, फोटोग्राफर के बिना, योरपीय महाभारत के समय में मैंने श्री कैलाश जी की यात्रा की थी। जो कुछ वर्णन, जो कुछ यात्रा का ब्योरा, मैंने दिया है वह आधुनिक 'सचित्र-युग' की परिभाषा के अनुसार तो है नहीं, मगर मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी यह पुस्तक बहुत से सज्जनों को श्री कैलाश दर्शन के लिये प्रेरित करेगी। मुझे आशा है कि कोई योग्य हिन्दी हितैषी महाशय, साधन सम्पन्न होकर, तिब्बत जायेंगे और वहां का सचित्र वर्णन हिन्दी संसार की भेंट करेंगे।

कैलाश दर्शन तथा मानसरोवर स्नान कर मैंने अपने जीवन की एक बड़ी इच्छा को पूर्ण किया। जो कुछ मुझे वहां आनन्द मिला मैंने हिन्दी संसार को उसका भागी बनाने का यत्न किया है। यह पुस्तक केवल मेरे हृदय के उद्गार हैं। मैंने किसी योरपीय वैज्ञानिक की तरह, अथवा अल्मोड़ा के किसी राजकर्मचारी की तरह बीस बीस मनुष्यों का बोझा लाद कर तिब्बत की यात्रा नहीं की थी, मैं केवल एक कठिन व्रत पालनार्थ वहां गया था। उन दिनों जब कि भारत के सब

दरवाज़े बन्द थे और बिना पासपोर्ट के कोई भारत से बा
जा नहीं सकता था, मेरे जैसे पुरुष का साधन अपेक्ष हो व
तिब्बत जाना हो नहीं सकता था। अतएव सहृदय पाठक,
यदि इस छोटी सी पुस्तक से कुछ भी आनन्द आपने अनुभव
किया है, यदि भारत द्वारपाल हिमालय के दर्शनों की लालसा
आपके मन में जागृत हो उठी है, यदि कमाऊं की पृथ्वी की
लावण्यता देखने की लालसा आप में उत्पन्न हो गई है, तो
समझूंगा कि मेरा उद्योग सफल हो गया।

मैं चाहता हूं कि मेरे देश के बच्चे योरपीय वैज्ञानिकों
की तरह हिमाचल का अन्वेषण करें; मेरी इच्छा है कि मेरे
देशवासी अपने देश के पर्वतों की उपयोगिता को समझें; मेरी
हार्दिक अभिलाषा है कि भारत का शिक्षित समुदाय भारत के
पड़ोसिओं से परिचय प्राप्त करे। श्रीकैलाश जी की यात्रा
करने से मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि भारत की भावी
उन्नति के साधनों का असली रहस्य हमारे पर्वतों में छिपा हुआ
है, और भारतोत्थान की अभिलाषा को प्रत्यक्ष करने के लिये
हमें पूज्य हिमाचल की शरण लेनी पड़ेगी।

परमात्मन्! क्या मेरे देशबन्धु मेरी आवाज़ को सुनेंगे?